पचपन का फेर

श्रीमती विमला लूथरा एम० ए०

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

विषय-क्रम

पचपनका फेर

•

दिन इधर-उधर देखभाल कर जगहका प्रबंध करके तुम लोगों को बुला लूँगा।

कमला— तो उषाको होस्टलमें भेज दें ?

हरगोपाल—हाँ।

कमला— और जीत ?

हरगोपाल—वह भी बोर्डिंगहाउसमें ही रहेगा।

कमला— देख लो, मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। दोनोंको होस्टलमें भेजनेसे दो ढाई सौ रुपये खर्च होंगे। सौ दो सौ अपने लिए भी चाहिए। देख लो, जैसे उचित समझो।

हरगोपाल—[चौकन्ने होकर] दो ढाई सौ ! दो ढाई सौ तो मुश्किलसे पेन्शन ही मिलेगी।

कमला— तो जैसे आप कहिए।

[हरगोपाल गहरी सोचमें पड़ जाते हैं]

हरगोपाल—कहूँ क्या ! कुछ समझमें नहीं आता।

कमला— [बाहर किसीके पैरोंकी आवाज सुन कर] डाकिया मालूम देता है, देखें क्या लाया है ?

[बाहर जाती हैं और दो पत्र हाथ में लिये लौट आती है]

हरगोपाल—किसके हैं ?

कमला— दोनों आप हीके नाम हैं। एक तो सरकारी मालूम देता है। [देती है।]

हरगोपाल—[सरकारी खत खोल कर पढ़ता है। फिर दाँत पीसता है] कैसे उल्लू इकट्ठे हुए हैं इस दफ़्तर में ! काश, मैं इस समय वहाँ होता, सबको सीधा करके रख देता।

कमला— क्यों, अब क्या फरमाते हैं ?

हरगोपाल—कहते हैं अपना सिर ! पूछते हैं कि मैंने नौकरी किस दिन शुरू की थी ? अरे, काठके उल्लुओ, मेरी सर्विस-बुक देखो, अपना रिकार्ड देखो। कुछ नहीं तो पचास जगह लिखा होगा

परन्तु कौन मेज परसे उठ कर अलमारीमें ढूँढ़े ? घण्टी बजाई, टाईपिस्टको बुलाया और चिट्ठी लिखवा दी। उनका क्या बिगड़ता है, मुझे पेन्शन मिले न मिले।

कमला— आप किसी दिन स्वयं ही जाकर यह काम करवाइए।

हरगोपाल—यह भी करके देखूँगा। [दूसरा लिफाफा उठाता है। बड़े ध्यानसे उसे देखता है।]

कमला— किसका है ?

हरगोपाल—इस लिखाईको तो मैं नहीं पहचानता।

[पत्र खोलता है। पढ़ने लगता है। चेहरे पर हलकी-सी मुसकराहट आती है, जो धीरे-धीरे खुशीका रूप धारण कर लेती है। उत्तेजित होकर कुरसी पर से उठ बैठता है।]

कमला— क्या है ?

हरगोपाल—बस, छोड़ दो सब पैकिंग वैकिंग। तुम मेरे कपड़े ठीक करो।

कमला— [उत्तेजित होकर] क्या खुशखबरी है ?

हरगोपाल—इससे बडी खुशखबरी और क्या हो सकती है ! यह देखो, यह नार्मल हाई स्कूल तथा कालिजकी मैनेजिंग कमेटीकी ओर से बुलावा आया है, कहते है : "हमको एक मैनेजरकी जरूरत है। हमें पता चला है कि आप अभी अभी रिटायर हुए है। हमारे बडे सौभाग्यकी बात होगी यदि आप हमारे स्कूलके लिए काम करना स्वीकार कर सकें। हमें खेद है कि हम आपको उतना वेतन न दे सकेंगे जितना आपकी उच्च स्थितिके आदमीको मिलना चाहिए। फिर भी हम आशा करते है कि आप बच्चोंकी पढ़ाईकी ओर ध्यान करते हुए इसे दानकर्म समझ कर ही ढाई सौ रुपये स्वीकार कर लेंगे। यदि आपको यह स्वीकार हो तो आप दिसम्बरकी पहली..." [कमलासे] सुना ! दिसम्बरकी पहली, अर्थात् कलसे काम शुरू कर दूँ।

कमला— [खुशीसे] यह तो बड़ी अच्छी बात है।

पचपनका फेर

[अण्डर सेक्रेटरी हरगोपाल अपने दफ़्तरमें बैठे फाइलें देख रहे हैं। कमरा अन्य सरकारी दफ़्तरोंकी भाँति सीधेसादे ढंगसे सजा है। बड़ी-सी मेज पर फाइलोंके ढेर, क़लमदान, टेलीफ़ोन, एशट्रे, पानीका गिलास इत्यादि रखे हैं। सामने दो-चार कुरसियाँ आनेजाने वालोंके लिए पड़ी हैं। दीवार पर एक कैलेण्डर टँगा है जिस पर उनके मंत्रीजीकी तसवीर है। हरगोपाल बड़ी गम्भीरतासे किसी फ़ाइलको पढ़नेमें व्यस्त हैं। एक क्लर्क हाथमें एक-दो फ़ाइलें लिये आता है।]

हरगोपाल—और फाइलें ले आये? पहले ही क्या मेरे पास कम थीं? इन्हें ही निबटानेमें पाँच छः दिन लग जायँगे। [मुसकरा कर] तुम्हारा जो नया अफ़सर आयगा उसके लिए भी तो कुछ काम बाक़ी रहने दो।

क्लर्क— साहब, यह फाइल तो बहुत आवश्यक है।

हरगोपाल—तो क्या हुआ? ऐसी भी क्या आवश्यक होगी—आठ दस दिन इधर-उधर होनेसे कोई पहाड़ थोड़े ही टूट पड़ेगा!

क्लर्क— नहीं, साहब, यह मामला बहुत टेढ़ा है। बिहार सरकार वाला झगड़ा और किसीकी समझमें नहीं आयगा। आप तो इसको कई सालसे देख रहे हैं, आपको तो फाइलका एक-एक शब्द याद है। किसी दूसरेके बसका रोग नहीं।

हरगोपाल—[चापलूसीसे प्रसन्न हो कर] अच्छा! तो यह रख जाओ, किन्तु इसके बाद और कोई फ़ाइल मत ले आना। जरा सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबको मेरे पास भेजना।

क्लर्क— [जाते हुए] बहुत अच्छा, साहब।

हरगोपाल—[स्वतः] फाइलें भेजे चले जाते हैं। देखूँगा इतना काम और कौन सँभालता है! [टेलीफ़ोन बजता है] हैलो...हाँ, कमला...भई, क्षमा करो, भूल गया...अभी लो। [घंटी बजाता है। चपरासी आता है] देखो, तुम साइकिल ले कर जल्दी जाओ। बच्चूकी छुट्टी हो गई होगी, उसे स्कूलसे ले कर घर पहुँचा दो और फिर राशन लाना। और कोई काम हो तो बीबीजीसे पूछ लेना। [टेलीफ़ोन पर] बस अभी पहुँच जायगा पाँच मिनिटमें...मैं क्या कर रहा हूँ? अरे, वही जो रोज करता हूँ...हाँ, अरजी लिख दी है कि रिटायर हो जानेके बाद भी दो महीने तक सरकारी बँगलेमें रहनेकी आज्ञा दी जाय...नियम यही है कि दो महीनेसे अधिक मकान नहीं रखा जा सकता...हाँ, तीस साल काम तो किया है, पर सरकार कोई इसके लिए अपनेको आभारी थोड़े ही समझती है...

[बालकराम आता है। उसे बैठनेके लिए संकेत करके फोन पर] तुम कह रही थी न कि दरियागंजमें तुम्हारे किसी रिश्तेदारका बड़ा-सा घर है, उसका कुछ हिस्सा मिल जायगा—दरियागंज अच्छी जगह है...शोर? रहते-रहते आदत पड़ जायगी... कठिन ही दिखाई देता है...खैर, घर पर आ कर बात करूँगा। [टेलीफ़ोन रख देता है। बालकरामसे] कहो, मेरे कागज़ तैयार हुए कि नहीं अभी? लगवा लेते मेरा अँगूठा पेनशनके कागजों पर तो इस कामसे भी निश्चिन्त हो जाता।

बालकराम—साहब, उसी काममें लगा हूँ। आपकी पेनशनको कम्युट कराने के कागज तो टाइप हो गये हैं। प्रोवीडेण्ट फण्डका ड्राफ्ट भी तैयार हो रहा है। अब सर्विसका प्रमाणपत्र मिल जाय तो सारी फाइल आपके पास ले आऊँ।

हरगोपाल—तुम्हें क्या हो गया, बालकराम? तुम तो इतने सुस्त कभी नहीं थे।

बालकराम—मैं तो भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। अपनी ओरसे तो सब ठीक-ठाक करके भेजा था, पर अकाउण्टेण्ट जनरलके दफ़्तरने तीन हफ़्ते फाइल दबाये रखनेके बाद अब यह पूछा है कि आपने जो १९३८ में पंदरह दिनकी छुट्टी ली थी वह १४ सितंबरकी दोपहरसे पहले शुरू हुई थी या बाद में ?

हरगोपाल—यह अकाउण्टेण्ट जनरल तो बड़ी ही मुसीबत है ! अच्छा, जितनी जल्दी हो सके इस कामको पूरा करो।

बालकराम—साहब, आपके कामकी तो मुझे सबसे अधिक चिन्ता रहती है।

हरगोपाल—कहाँ रहती है ! मैं यह फाइलें देख रहा हूँ—बहुत कच्चा काम करके भेज रहे हैं दफ़्तर वाले।

बालकराम—[मुँह लटका कर] क्या बताऊँ, साहब, जबसे आपके जानेका सुना है, काममें जरा भी मन नहीं लगता। और मुझे ही क्या, सारे दफ़्तरमें ऐसी उदासी छा गई है कि क्या कहें ! जिसे देखो हाथ पर हाथ धरे बैठा है। आपने हमें जिस प्रेम और सहानुभूतिसे काम सिखाया है, क्या हम उसे कभी भूल सकते हैं ?

हरगोपाल—मैंने तो केवल अपना कर्त्तव्य पालन किया है। तुम लोगोंको अपने बच्चोंकी तरह सिखाया है। प्यार भी किया, उत्साह भी बढ़ाया, डाँटा भी।

बालकराम—इसी लिए तो आपके जानेका इतना खेद हो रहा है, साहब... आप जैसा अफ़सर हमें कहाँ मिलेगा ! हमारी सरकार भी कमाल करती है—जो योग्य अफ़सर हो उसे काम करनेका ज़्यादा मौक़ा देना चाहिए। लेकिन नहीं, सरकार कुछ समझती ही नहीं, अब देखिए न, आपके कामसे एक साल और लाभ उठा सकती थी, परन्तु माना ही नहीं।

हरगोपाल—क्या लेता एक साल और नौकरी कर के ? अच्छा है इस चुगली, चापलूसी, पक्षपातके वातावरणसे दूर हो जाऊँगा।

तीस साल सवेरेसे शाम तक फाइल ही फाइल—इनसान थक भी तो जाता है ।

बालकराम—यह तो ठीक है,लेकिन सारा दिन कामके बिना भी तो आपका मन नही लगेगा ।

हरगोपाल—नही, मै तो अब आराम करना चाहता हूँ । शहरसे दूर एक छोटी सी झोपड़ी डाल लेगे । कुछ जमीन, कुछ गाय-बकरी, कुछ धर्मचर्चा रहेगी ।

बालकराम—इतना काम करनेके बाद आपको विश्राम करनेका पूरा हक़ है । लेकिन हमारा क्या होगा ? हमें तो अपने लिए घबराहट हो रही है । न जाने आपकी जगह कौन आयगा, कैसा स्वभाव होगा ?

[एक बाईस-तेईस वर्षका युवक, मुँहमें पाइप लगाये कमरेके अन्दर बेधड़क चला आता है । फिर बालकरामको देखकर जरा रुक जाता है ।]

हरगोपाल—आइए, आइए, कपूर साहब ।

कपूर— नहीं, आप काममें व्यस्त मालूम पड़ते है । मै फिर किसी समय आ जाऊँगा ।

हरगोपाल—नही, कोई ऐसा जरूरी काम नही । आप बैठिए तो । कहिए, कैसे आना हुआ ?

[बालकराम आदर भावसे उठकर जरा पीछे हटकर खड़ा हो जाता है]

कपूर— ऐसे ही, सवेरेसे यह सड़ी हुई फाइलें देखते-देखते थक गया । सोचा आपसे ही जरा गपशप रहे ।

हरगोपाल—ओहो, यह बात है !

कपूर— बात तो यही है । दो साल हो गये अंडर सेक्रेटरी बने हुए । बुरे फँसे है, दोस्त । न ठीक तरहसे खाना न पीना । किसी कामके लिए अवकाश ही नही मिलता । तुम कैसे खुशक़िस्मत हो । रिटायर हो रहे हो, मजे करोगे । घर बैठे पेनशन पाओगे । और हम ? काश, मै भी रिटायर हो सकता !

हरगोपाल—घबराओ नहीं, धीरे-धीरे काममें मन लगने लगेगा।

कपूर— भगवान् करे कि ऐसा हो ! मैं तो मर जाऊँगा फाइलें देखते देखते।

हरगोपाल—नहीं, ऐसा नहीं होता। शुरूमें थोड़ी घबराहट होती है, फिर तो ऐसा मन लगता है कि जैसे फाइलोंके विना गति ही न हो। दस दिनकी छुट्टी भी लो तो जीवन शून्य मालूम देता है।

कपूर— नहीं, जी, हमसे यह न होगा। मैं तो प्रयत्न कर रहा हूँ कि किसी राजदूतके साथ विदेश चला जाऊँ। वहाँ बड़े मजे रहेंगे। वहाँका काम ही मिलना-मिलाना, इकट्ठे बैठ कर खाना-पीना और ऐश करना है। आशीर्वाद दो कि मेरी इच्छा पूर्ण हो। [घड़ी देखकर] अरे, साढ़े चार हो गये ! मैं चलता हूँ।

हरगोपाल—ऐसी भी क्या जल्दी ! चले जाना।

कपूर— नहीं, मैंने क्लबमें किसीके साथ टेनिस खेलनेका वादा कर रखा है। कल मिलूँगा, अभी तो आप हैं न चार पाँच दिन ? [जाता है।]

हरगोपाल—[बालकरामसे] देखा, बालकराम, इन नये अफ़सरोंको ?

बालकराम—मैं तो डर रहा हूँ कि ऐसे ही कोई साहब आपकी जगह आ गये तो हमारी क्या गति होगी।

हरगोपाल—तुम्हारी तो जो गति होगी सो होगी ही, सरकारकी क्या होगी ? कलको यह लड़का डिप्टी सेक्रेटरी बन जायगा। क्या तो यह नोट लिखेगा और क्या दफ़्तर चलायगा !

बालकराम—साहब, पुराने अफ़सरोंका काम करनेका तथा काम लेनेका ढंग और था।

हरगोपाल—मुझे याद है, हमने काम किस तरह किया और कैसे सीखा, वह ज़माना और था। एक दिन दफ़्तरसे जाने लगे। साढ़े छः बज चुके थे। साहबने बुला कर कहा। "मिस्टर हरगोपाल,

यह कुछ काम आ गया है। इसे तुम्हीं निवटा सकते हो। कल सवेरे तक पूरा मिलना चाहिए।" साहब तो कह कर चले गये, लेकिन मैंने न खाना खाया, न सोया। रात भर अकेले दफ़्तरमें बैठ कर, उसी कमरेमें जहाँ अब तुम बैठते हो, काम पूरा किया। सुबह नौ बजे साहबकी मेज पर पहुँचा दिया तो साँस ली।

बालकराम—क्या कहने, साहब, आप के!

हरगोपाल—मैं तो अब भी यही कहूँगा कि नौकरीमें दो बातें बड़ी जरूरी हैं—स्वामिभक्ति और सच्चरित्रता। इनके बिना काम आगे चल ही नहीं सकता। खैर, हमने तो अच्छा-बुरा जैसा हुआ निवटा दिया। अब तुम जानो और तुम्हारे नये साहब जानें।

बालकराम—नये साहब तो जब आयेंगे देखा जायगा, पहले आपका काम तो करके ले आऊँ। अभी तो आप ठहरेंगे न थोड़ी देर?

हरगोपाल—[हँसते हुए] हाँ, मुझे कोई टेनिस या पोलो खेलने थोड़े ही जाना है।

[बालकराम जाता है। परदा गिरता है।]

[हरगोपालके घरका गोल कमरा। हरगोपाल कमरेमें बड़े अन्यमनस्क भावसे इधर-उधर चक्कर लगा रहे हैं। अलमारी खोल कर एक किताब निकालते हैं। उसके पन्ने इधर-उधर उलटते हैं, फिर उसको ठपसे बन्द कर देते हैं। दूसरी निकालते हैं, उसकी भी यही गति होती है। फिर अंगीठी पर रखी तसवीरें उठा कर इधर-उधर रखते हैं। फूलदानमेंसे फूल निकाल कर खिड़कीके बाहर फेंकते हैं। उनके हरएक काममें बेचैनी झलकती है। बैठ कर अखबार पढ़नेकी कोशिश करते हैं। फिर अखबार भी ज़ोरसे पटक देते हैं। खिसियाने होकर आवाज़ देते हैं।]

हरगोपाल—कमला! यह गंध कैसी आ रही है?

कमला—[अन्दरसे] नहीं तो, गंध तो कोई नहीं।

हरगोपाल—किसी चीज़के जलनेकी बू है।

कमला— नारायणने अंगीठी जलानेके लिए काग़ज डाला होगा, या दाल का पानी उबल रहा होगा।

हरगोपाल—और वह रायसिंह कहाँ है? मेरे जूतों पर अभी तक पालिश नहीं हुई।

कमला— उसे बाजार भेजा है। अभी लौट कर पालिश कर देगा। आपको कोई दफ़्तर थोड़े ही जाना है।

हरगोपाल—[चिढ़कर] दफ़्तर नहीं जाना है तो जूतों पर पालिश भी नहीं होगी, धोबी कपड़े भी नहीं लायगा, कमीजोंमें बटन भी नहीं लगेंगे? तो भगवे कपड़े पहन कर फिरा करूँ?

कमला— [कमरेमें प्रवेश करते हुए] क्या हो गया है आपको? ज़रा ज़रा सी बात पर खीझने लगे हैं। तुम्हीं बताओ नौकरको सुबह सब्जी लेने न भेजूँ तो खाना समय पर कैसे तैयार होगा?

हरगोपाल—जैसे पहले होता था।

कमला— पहले तो चपरासी सुबह आता था, साइकिल पर सब चीजें ला देता था। अब रायसिंहको पैदल जाना पड़ता है, तो देर तो लगेगी ही।

हरगोपाल—और सामान बाँधना तो अभी तक शुरू ही नहीं किया।

कमला— आप कुछ तय भी तो करें, कहाँ जाना है, क्या करना है?

हरगोपाल—जाना कहाँ है! यह भी भली कही! अभी तो दरियागंज ही जायेंगे, और कहाँ?

कमला— इतने चिड़चिड़े क्यों हो गये हैं आप?

हरगोपाल—तुम तो बात-बात में तानें देती हो।

कमला— ताने कौन देता है? मैंने तो सरल स्वभाव पूछा कि कहाँ जाना है। उसी हिसाबसे सामान बाँधू। आप कह रहे थे न कि देहरादूनके पास, पर्वतोंकी छाया तले झोंपड़ी बना कर रहेंगे। वरना दरियागंजके लिए सामान बाँधनेकी क्या जरूरत है!

अभी चपरासी ठेला ले कर आता है तो बहुत-सी चीजें लदवा कर भेज देती हूँ। उसमें देर ही क्या लगेगी !

हरगोपाल—[झल्ला कर] चपरासी भी तो नहीं आया अभी तक।

कमला— इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं।

[हरगोपाल अपने लड़केको आवाज देता है]

हरगोपाल—जीत ! ओ जीत ! जरा इधर आना। जल्दी ! [जीत आता है] पड़ोस वालोंके यहाँसे जाकर जरा टेलीफोन कर के पूछो कि चपरासी दफ़्तरसे चला कि नहीं अभी ?

जीत— अच्छा, पिताजी। [जाता है]

हरगोपाल—कैसे कृतघ्न है ये लोग ! मैंने ही इसे नौकर करवाया, फिर इसके ऊपर वालोंको छोड़ कर इसे पक्का करवाया। कहता था कि जब तक जीऊँगा आपका दास बन कर रहूँगा।

कमला— पिछले छः सालोंसे सारे दिन यहीं पड़ा रहता था। चाय, पानी, खाना, कपड़ा—अपना ही नहीं, अपने बच्चोंका भी, आज बच्चा बीमार है तो कल लड़कीका गौना। अब कहेगा : साहब क्या बताऊँ, छुट्टी ही नहीं मिलती।

हरगोपाल—उस सुपरिण्टेण्डेण्टके बच्चेको तो देखो, कितनी चापलूसी करता था : साहब, आपका गुलाम हूँ, जिस समय कहियेगा हाजिर हो जाऊँगा। देख लो, दो महीने हो गये, कभी सूरत दिखाई दी उसकी ?

[जीत आता है]

जीत— पिताजी, उनका टेलीफोन खराब है।

कमला— क्या मुसीबत है ! मुए टेलीफोन भी उठा कर ले गये। पेन्शन क्या मिली आफ़त आई। भला पूछो, यहाँ टेलीफोन लगा रहनेसे किसीको क्या तकलीफ़ थी ? अब मुँह उठा कर दरवाजे को घूर घूर कर देखो कि कब चपरासी आय और काम शुरू हो।

[हरगोपालके दो पुराने मित्र, दोनों पेन्शन पानेवाले, प्रवेश करते हैं । कमला नमस्कार करके चुपकेसे अन्दर चली जाती है ।]

हरगोपाल—आइए, आइए, चोपड़ा साहब, नन्दा साहब ।

नन्दा— घूमने निकले थे । सोचा अब तो तुम भी हमारी बिरादरीमें सम्मिलित हो गये, जरा देखते चलें, क्या हो रहा है ।

चोपड़ा— कहो, क्या कर रहे हो ?

हरगोपाल—मक्खियाँ मार रहा हूँ—और क्या करना है !

नन्दा— हमने तो आपसे पहले ही कहा था कि अपना एक नियम बना लो, प्रात:काल सैर करने चला करो—हमारी उमरके लोगों के लिए बहुत जरूरी है । प्रात:कालके वायु सेवनसे एक तो पाचन-शक्ति ठीक रहती है, दूसरे आत्माको भी शान्ति मिलती है ।

हरगोपाल—कहते तो आप शायद ठीक ही होंगे, परन्तु सैर भी कितनी देर करूँ—आठ बजे नहीं, नौ बजे घर आ जाऊँगा । फिर भी सारा दिन पड़ा है ।

चोपड़ा— किसी समाजके सदस्य बन जाओ । नहा धोकर गये, दो घंटे वहाँ बिता आये । अपने कई साथी मिल जाते है । जरा गपशप चलती है । दिल बहला रहता है ।

नन्दा— मै तो पुस्तकालय चला जाता हूँ । कुछ पत्र-पत्रिकाएँ देखीं, कुछ तसवीरें । जमानेकी नब्ज पर जैसे हाथ रखा हो—दुनिया किस चाल चलती है ।

हरगोपाल—जमानेकी चालका पता तो घर बैठे ही लग जाता है—निजी अनुभवसे । पेन्शन कम्यूट अभी तक नही हुई । दफ़्तर वाले कागज अर्थ-विभागके पास बताते है, और वहाँ वाले दफ़्तर के पास । बात वहीकी वही है ।

चोपड़ा— मेरी रायमें तो पेन्शन कम्यूट कराओ ही नहीं । मैने क्या लिया पेन्शन कम्यूट कराके—तीस हजार मिला था, दस हजार

व्यापारमें लगाया, दस हज़ारके शेयर खरीद लिये। न इसमेंसे कुछ मिला, न उसमेंसे कुछ वसूल हुआ, बल्कि रुपया ही फँस गया। मैं तो कहता हूँ वही सात हजार रुपये अच्छे रहे जो लड़कीकी शादीमें खर्च किये। कम्यूट न कराता तो पाँच सौ रुपये महीने तो आते।

नन्दा— पेन्शन पाना भी जीवनमें नई उलझनें पैदा कर देता है। तुमको जबरदस्ती यह महसूस कराया जाता है कि अब तुम बूढ़े और बेकार हो गये, चाहे तुम कितने ही हृष्टपुष्ट क्यों न हो!

चोपड़ा— मैं तो समझता हूँ यह अमूल ही ग़लत है कि मनुष्य पचपन साल की उमरमें रिटायर हो। हाई कोर्टके जजोंको देखो—साठ पैंसठ साल तक काम करते हैं।

हरगोपाल—[मुसकराकर] और हमारे नेता तो इस उमर पर आ कर शादी करते हैं। साठ सत्तर सालके हो कर मन्त्री बनते हैं। रिटायर होते तो इनको न कभी किसीने देखा न सुना।

नन्दा— ऐसे तो बहुतसे लोग हैं। डाक्टरोंको ही देख लो। जवानको कोई पूछता नहीं। कहते हैं, अनाड़ी है, अनुभव नहीं, चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो।

हरगोपाल—तो हम सरकारी नौकरोंने ही क्या अपराध किया है जो हमें इतनी जल्दी नौकरीसे अलग कर दिया जाता है? बेकार ही अपनी हीनताका, चाहे शारीरिक हो या मानसिक, अनुभव होने लगता है।

नन्दा— ठीक कहते हो, दोस्त। देख लो, जो लोग हमारे आगे पीछे फिरा करते थे वह भी अब परवा नहीं करते, तो दूसरोंकी भली कही। मैंने तो इसी उलझनसे निकलनेके लिए एक दो जगह नौकरी भी की।

हरगोपाल—अच्छा!

नन्दा— लेकिन उसमें एक बड़ी अड़चन यह है कि एक आध सालके लिए ही नौकरी मिलती है। इतने कम समयमें इंसान अपनी योग्यताका प्रमाण भी क्या दे!

हरगोपाल—पेन्शन पाना क्या इतना बुरा समझा जाता है? तब तो, भैया, मैं नहीं करूँगा ऐसी नौकरी।

चोपड़ा— तो करोगे क्या?

हरगोपाल—देहरादूनके जंगलोंमें एक बहुत सुन्दर स्थान है। एक ओर नाला बहता है, दूसरी ओर बरफ़ीले पानीका झरना है। एक बार उधर घूमने गये थे तो देखा था। तबसे मनमें यही विचार आता है कि वहीं एक झोंपड़ी डाल लूँ। कितनी शान्ति मिलती है प्रकृतिकी गोदमें! न किसीका लेना न देना।

चोपड़ा— कल्पना तो अच्छी है, लेकिन ऐसा होना कठिन है।

हरगोपाल—क्या कठिनाई है?

चोपड़ा— तुम्हारा खाना कौन बनायेगा?

हरगोपाल—मेरी पत्नी।

नन्दा— और झरनेको कब तक देखा करोगे? एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चौथे दिन चाहोगे उसमें डूब मरूँ।

[चोपड़ा और नन्दा हँसते हैं]

हरगोपाल—तुम लोग तो इसे मजाक समझ रहे हो।

चोपड़ा— मजाक ही तो है यह। अरे भाई, न अखबार मिलेगा, न डाकिया आयगा। कोई हनीमून मनाने तो जा नहीं रहे हो कि सारे दिन पत्नीकी सूरत देख कर काट दोगे।

नन्दा— स्वयं तो मुसीबत उठाओगे ही—पत्नीको क्यों साथमें घसीटते हो?

चोपड़ा— दोनों बैठ कर सारे दिन लड़ाई झगड़ा करोगे। यह बहकी बहकी बातें छोड़ दो। कोई कामकी बात करो। शहरसे दूर ही रहना चाहते हो तो पाँच दस एकड़ जमीन ख़रीद लो।

देखो सुनो, मन बहलाओ। स्वयं भी सुख भोगोगे, देशका भी लाभ होगा। आजकल जितना पैसा खेतीमें पैसा कहीं नहीं है और किसी काममें नहीं मिलेगा। मैं सच कहता हूँ कि यदि मैंने अपना पैसा इधर-उधर न फँसाया होता तो मैं तो ऐसी ही करता।

नन्दा— यह वानप्रस्थ आश्रमकी बेकार जिन्दगीसे तो हजार दर्जे अच्छा रहेगा।

हरगोपाल—नहीं, भाई, यह मुझसे न होगा। सारा दिन आसमानकी ओर देखते रहो कि कब वर्षा हो और कब खेतोंमें बीज डालें। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि एकान्तमें बैठ कर गीता, वेद तथा उपनिषदोंका अध्ययन करूँगा।

चोपड़ा— [घड़ी देख कर व्यंग्यसे] अच्छा तो, संन्यासीजी, प्रणाम। अब हमें आज्ञा दीजिए।

हरगोपाल—बैठो न, जल्दी क्या है ?

चोपड़ा— भई, अभी स्नान आदि करना है, फिर समाज जाऊँगा।

नन्दा— आजके अखबारमें एक विज्ञापन है। मैं तो उसके लिए अरजी भेजना चाहता हूँ। छोटे-छोटे बच्चे हैं, मैं तो संन्यासका विचार भी नहीं कर सकता।

[दोनों उठकर चल देते हैं]

हरगोपाल—कमला ! कमला !

कमला— [अन्दर ही से] सामान बांध रही हूँ।

हरगोपाल—थोड़ी देरके लिए छोड़ दो। जरा इधर आओ, जरूरी काम है।

[कमला आती है]

कमला— कहो, अब क्या सूझी ?

हरगोपाल—देखो, व्यंग्य करना छोड़ दो। मेरी सलाह है कि तुम लोग तो चलो दरियागंज और मैं जाता हूँ देहरादून। वहाँ दस पंदरह

हरगोपाल—[उत्तेजित होकर] देखा ! ऐसे देता है भगवान् । लो अब करो तैयारी । रायसिंह, ओ रायसिंह, जल्दी जूतों पर पालिश करो । जीत, इधर आओ ।

जीत— [दूरसे] आया, पिताजी ।

हरगोपाल—जल्दी आओ, अपनी साइकिल लेकर, ज़रूरी काम है । [कमला से] निकालो मेरी पैंट, धोबीके पास ले जाए इस्तिरीके लिए । नारायण, अरे नारायण, खानेमें कितनी देर है ? [कमलासे] तुम ज़रा जाओ न, जल्दी तैयार करवा दो ।

कमला— इतने उतावले क्यों हो रहे हो ? कल तक सब ठीक हो जायगा ।

हरगोपाल—देखो, अब बैठ कर बातें बनानेका समय नहीं है । [उसकी बाँह पकड़ कर उठा देता है] तुम जाओ, मेरे कपड़े निकालो, अच्छी सी कमीज निकालना—वह नीली पापलेनकी । मुझे अभी जाना होगा ।

[उसे दरवाज़ेके अन्दर धकेल देता है । चपरासी आता है]

चपरासी— साहब, ठेला लाया हूँ ।

हरगोपाल—[घुड़क कर] जहन्नुममें जाओ तुम और तुम्हारा ठेला ! सवेरेसे कहाँ था ?

चपरासी— बात यह है कि...

हरगोपाल—चुप रहो ! सब जानता हूँ मैं । तुम नमकहराम हो । जाओ भाग जाओ यहाँसे । कलसे हमारा नया चपरासी आयगा ।

उषा— [शोर सुनकर आते हुए] पापा, मैं पढ़नेकी कोशिश कर रही हूँ परसों मेरी परीक्षा है और आप...

हरगोपाल—परीक्षा तो परसों है । मुझे तो कल जाना है ।

उषा— कहाँ जाना है कल ?

हरगोपाल—यह बातें पीछे होती रहेंगी । उषा, तुम जल्दीसे मेरा पेन और पैडका काग़ज लाओ । मुझे स्वीकृति लिख कर भेजनी है ।

[उषा कोनेमें रखी मेज पर कागज कलम ढूंढ़ती है]

हरगोपाल--जल्दी करो। इस घरमें कभी कोई चीज वक्त पर नहीं मिलती।

[उषा कागज़ लाती है। हरगोपाल बैठ कर लिखना शुरू करता है। परदा गिरता है।]

भीमसेन— मैं कोई भी हूँ—आप टिकट दिखाइए ।

यात्री— क्या तुम टिकट चेकर हो यहाँ ?

भीमसेन— [साहसपूर्वक] हाँ ।

यात्री— तुमने अपनी वरदी क्यों नहीं पहन रखी है ? क्या नाम है तुम्हारा ?

[कुछ गड़बड़ देखकर शिक्षक जल्दीसे उन दोनोंके पास पहुँचता है ।]

शिक्षक— इसके नाम और वरदीसे आपको कोई मतलब नहीं । जब आपसे टिकट माँगा जा , तो आपको दे देना चाहिए ।

यात्री— यह भी खूब रहा ! पर, जनाब, आप कौन है ?

शिक्षक— मैं एक रेलवे कर्मचारी हूँ ।

यात्री— आप भी अपनी पूरी वरदीमें नहीं हैं ! आपका नाम क्या है ?

शिक्षक— जनाब, मुझे धोखा देनेकी कोशिश मत कीजिए । टिकट दिखाइए, नहीं तो मैं पुलिसको बुलाता हूँ ।

यात्री— पुलिसको बुलाना बेकार रहेगा ।

शिक्षक— [अपनी हथेली खुजाते हुए] अब आपने क़ायदेकी बात की है ।

यात्री— मेरे पास टिकट नहीं है । पर देखिए—इससे शायद आपका काम चल जाय...[वह अपनी जेबसे पीतलका रेलवेके बड़े अफ़सरोंका पास निकाल कर दिखाता है, जिसे देखकर शिक्षक और भीमसेन—दोनों चकरा जाते हैं ।] और आप, जो कुछ भी आपका नाम हो, कल सुबह साढ़े दस बजे मेरे दफ्तरमें हाजिर हो जाइएगा ।

शिक्षक— [मरी सी आवाजमें] बहुत अच्छा, हुजूर ।

[रेलवेका वह अफसर शानके साथ वहाँसे चल देता है । शिक्षक ग़श खाकर वहीं ढेर हो जाता है । विद्यार्थी जल्दीसे उसे उठा कर ठेले पर डाल कर बाहर ले जाते हैं—तभी परदा गिरता है ।]

●

नीम हकीम

•

लाइन-क्लीअर

•

लाइन-क्लीअर

[रेलवे स्टेशनका दृश्य। यात्रियों, कुलियों तथा अपने इष्टमित्रोंको विदा करने आनेवाले अन्य लोगोंके हावभावोंसे पता लग रहा है कि गाड़ी छूटने ही वाली है। दाईं ओर पुलका एक भाग और सीढ़ियां दिखाई दे रही हैं।

एक अधेड़ पुरुष, जो एक मैला-सा नीला कोट पहने है, जिसके पीतलके वटनोंपर पालिश नहीं है, एक ओरसे आता है। उसके पीछे कुछ युवक हैं, जो उसके विद्यार्थी मालूम होते हैं। रंगमंचके बीचमें आकर वह रुक जाता है और सवको चुप करनेके लिए अपना हाथ ऊपर उठाता है।]

शिक्षक— रेलवे क़ानूनकी किताबमें जो कुछ लिखा होता है, उससे वास्तविकताका कोई संवंध नहीं होता—रेलगाड़ियोंको चलानेके लिए कुछ और ही अनुभवोंकी आवश्यकता होती है। मैं आज जानबूझ कर तुम लोगोंको यहाँ लाया हूँ, ताकि इस समय, जब कई गाड़ियाँ आती और छूटती हैं, तुम्हें कुछ मतलवकी वातें बता सकूँ। जब तुम लोग परीक्षा पास करनेके वाद टिकट चेकर, वुकिंग क्लर्क और असिस्टेण्ट स्टेशन-मास्टर वनोगे, तव यह वातें तुम्हारे काम आयेंगी। अच्छा, अव आँखें खोल कर देखते जाओ कि क्या होता है।

[एक यात्री बेतहाशा भागता हुआ आता है। उसके पीछे क़ुली सामान उठाये हुए है। क़ुलीको इस बातकी कोई चिन्ता नहीं कि यात्रीको गाड़ी मिलती है या नहीं। देरसे आनेवाले यात्रियोंकी तरह यह आदमी भी जगहकी तलाशमें एक डिब्बेसे दूसरे डिब्बेमें झांकता हुआ चक्कर काटता

है। जब उसे अपनी जगह नहीं मिलती, तो वह रिजरवेशन क्लर्कके पास जाता है, जो एक सूचीको देख रहा था।]

यात्री— [बेदम होकर] क्या आप बता सकते हैं कि मेरी सीट किस डिब्बेमें है? मेरा नाम एस० टी० मित्रा है। कानपुरके लिए दूसरे दर्जेमें मेरी सीट रिजर्व है।

रिजरवेशन क्लर्क—मित्रा? अभी देखता हूँ। हां, आपका नाम था तो, लेकिन क्योंकि आप गाड़ी छूटनेके समयसे दस मिनट पहले नहीं आये, इसलिए आपकी सीट दूसरेको दे दी गई।

मित्रा— लेकिन मेरी सीट तो रिजर्व थी।

रिजरवेशन क्लर्क—इसी लिए तो दस मिनिट पहले तक हमने उसे खाली रखा।

मित्रा— ओह! लेकिन मुझे जरूरी जाना है। आप मुझे कोई दूसरी सीट नहीं दे सकते?

रिजरवेशन क्लर्क—यह तो बहुत मुश्किल है; सब डिब्बे भरे हुए हैं। [अपनी हथेली किसी मतलबसे खुजाते हुए] फिर भी मैं कोशिश कर सकता हूँ।

मित्रा— बड़ी मेहरबानी।

[मित्रा अपनी जेबमें हाथ डालकर कुछ निकालता है और रेलवेके प्रतिनिधिको चुपकेसे दे देता है—इस काररवाईका जिक्र न तो टाइमटेबिल में है, न रेलवे क़ानूनकी किताबमें।]

रिजरवेशन क्लर्क—अच्छा, मेरे साथ आइए।

[दोनों सामनेवाले डिब्बेके पास जाते हैं।]

रिजरवेशन क्लर्क—[दरवाजा खोलते हुए] आप अपना सामान अंदर रखिए—नीचे वाली तीन नम्बरकी सीट है आपकी।

मित्रा— आपका बहुत बहुत शुक्रिया।

[क्लर्क चाबीसे रिजरवेशन लेबिलका खाना खोलकर एक नाम काट देता है , और उसकी जगह मित्राका नाम लिख देता है ।]

रिज़रवेशन क्लर्क—अच्छा, जनाब, अब आप आरामसे बैठिए । [जाता है]

शिक्षक— गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आनेसे पहले ही रिज़रवेशन लेबिल पर कुछ नक़ली नाम लिख दिये जाते हैं, जैसे, मिस्टर और मिसेज राय, मिस्टर दत्त, मिस्टर सिंह । लेकिन कभी पूरा नाम नहीं लिखना चाहिए । नहीं तो कभी-न-कभी जरूर पकड़े जाओगे । प्रसिद्ध व्यक्तियोंके नाम भी नहीं लिखने चाहिए, जैसे, अगर कहीं ओंकारनाथ ठाकुर, या मोरारजी देसाई या मैथिलीशरण गुप्तका नाम लिख दिया, तो मुसीबत में पड़ जाओगे । समझे ?

[स्टेशनका घंटा घनघना कर बजता है; इंजन सीटी देता है; एक नवयुवक गार्ड बाईं ओरसे आता है और जनाने डिब्बेके सामने खड़े होकर हरी झंडी हिलाता है ।]

शिक्षक— कुछ देखा तुम लोगोंने ?

एक विद्यार्थी—क्या ?

शिक्षक— गार्ड ज़नाने डिब्बेके सामने खड़ा है । युवक हमेशा यही करते हैं; लड़के तो लड़के ही रहेंगे । जब ये लोग बुड्ढे हो जायँगे, तो अपने ही या बरफ़ वाले डिब्बेसे सीटी बजा दिया करेंगे और वहींसे झंडी हिला देंगे ।

[इंजन फिर सीटी बजाता है और गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगती है । एक आदमी भागता हुआ आता है और गाड़ीकी दिशामें अपना हाथ तेजीसे हिलाता है ।]

यात्री— क्या गाड़ी छूट गई ?

शिक्षक— मालूम तो यही देता है । दूसरी गाड़ी छः पैंतीस पर जाती है ।

यात्री— दूसरी गाड़ीसे क्या मतलब—मैं इसी गाड़ीसे उतरा था। उस गधे क़ुलीने मेरा ट्रंक इसी गाड़ीमें ही छोड़ दिया। अब कैसे मिले ?

शिक्षक— गाड़ी ?

यात्री— नहीं, मेरा ट्रंक।

शिक्षक— यह तो मेल गाड़ी थी—मुझे तो आशा नहीं अब आपको अपना ट्रंक मिल सकेगा। क्या उसमें कोई क़ीमती चीज़ थी ?

यात्री— अरे, उसमें न जाने क्या क्या था।

शिक्षक— खैर, वह लास्ट प्रोपर्टी आफ़िसमें दाखिल हो जायगा—तब आप उसे वापस ले सकते हैं।

यात्री— मुझे इसकी आशा नहीं—क्योंकि मुझे मालूम है रेलवे विभाग में कैसी लूटखसोट मचती है।

शिक्षक— अगर ट्रंकमें कुछ ज्यादा क़ीमती माल नहीं है, तो उसके लिए इतनी तकलीफ़ उठाना बेकार है।

यात्री— उसमें कुछ रुपये भी थे—सौ रुपये।

शिक्षक— अगर एक हज़ार रुपयेका मामला होता तो स्टेशन सुपरिण्टेण्डेण्टसे कह सुन कर रास्तेके किसी छोटे स्टेशन पर गाड़ीको रोका जा सकता था।

यात्री— [भिन्ना कर] बात यह है कि मुझे अब ठीकसे याद आ गया, उसमें क़रीब पांच छः सौ रुपये और कुछ जरूरी काग़ज़ात थे।

शिक्षक— [यात्रीको ठिकाने पर लाकर] आपके नुक़सानका मुझे दुःख है। मैं आपकी सहायता करनेको तैयार हूं, लेकिन [धीरेसे उसके कानमें] वह स्टेशन सुपरिंटे-डेण्ट बड़ा बेईमान है।

यात्री— बीस रुपयेमें काम हो जायगा ?

शिक्षक— [सिर हिलाते हुए] अजी, बीस रुपयेकी तरफ़ तो वह देखेगा भी नहीं।

यात्री— तीस...चालीस...पचास ?

शिक्षक— नहीं, जी। इतनेसे क्या होता है। अच्छा, मुझे क्षमा कीजिए, अब मुझे दूसरे प्लेटफ़ार्म पर जाना है—ड्यूटी है मेरी। मैं तो यही चाहता था कि आपके कुछ काम आ सकूँ—ख़ैर। [जानेके लिए उद्यत होता है।]

यात्री— अच्छा, मैं सौ रुपये दे सकता हूँ। [शिक्षक सिर हिलाता है।] अच्छा, तो बस डेढ़ सौ पर बात तय रही।

शिक्षक— अगर आप दो सौ दे सकें, तो मैं और ज़्यादाके लिए नहीं कहूँगा। गाड़ी दूर निकली जा रही है।

यात्री— यह सरासर बेईमानी है—ख़ैर, मैं दो सौ देनेको तैयार हूँ। मुझे ट्रंक कब मिलेगा ?

शिक्षक— आप रिफ्रेशमेण्ट रूममें बैठिए। मैं जल्दी ही सब बात तय करके आता हूँ।

यात्री— अच्छी बात है।

[यात्री रिफ्रेशमेण्ट रूमकी तरफ़ जाता है और उस दिनको कोसता जाता है, जिस दिन इतनी रफ़्तारसे चलने वाले इंजनका आविष्कार हुआ था।]

शिक्षक— [अपने विद्यार्थियोंसे] देखा, किस सफ़ाईसे काम किया।

सब विद्यार्थी— क्या बात है! लेकिन उस यात्रीको ट्रंक वापस कैसे मिलेगा ?

शिक्षक— इस गाड़ीको अगले स्टेशन पर दूसरी गाड़ीको निकल जाने के लिए आधे घंटे रुकना पड़ेगा। भगतराम, तुम ए. एस. एम. से जाकर कहो कि टेलीफ़ोन करके अगले स्टेशनसे वह ट्रंक ट्रौलीसे वापस मँगवा ले।

भगतराम— वह अपना हिस्सा नहीं माँगेगा ?

शिक्षक— तुम भी निरे बुद्धू हो! वर्षों पहले ऐसी बातोंका इन्तज़ाम हो चुका है। रेलवेमें हमेशासे ऐसा होता आया है। हाँ, तुम सबको चाय मिलेगी।

सब विद्यार्थी--सिर्फ़ चाय ही ?

शिक्षक--- अभी तुम लोग इन तरकीबोंको सीख ही रहे हो--यह न भूलो। जब तुम खुद काम करने लगोगे, तो रेल कर्मचारियोंकी सब सुविधाएं तुम्हें स्वयं मिल जायेंगी।

[भगतराम जाता है।]

रामप्रताप--- जिस खोये हुए सामानका कोई दावा नहीं करता, उसका क्या होता है ?

शिक्षक--- हम लोग उसकी अच्छी तरह जांच-पड़ताल करते हैं। अगर उसमें कोई खानेपीनेकी चीज होती है, तो हम लोग उसका उचित उपयोग करते हैं। और अगर कोई कामकी चीज होती है, तो आगे कुछ करनेसे पहले दो या तीन बार अच्छी तरह सोचते-समझते हैं। [आंख मारकर वह अपना मतलब स्पष्ट करता है] उसमेंसे कुछ चीजें तो हम लास्ट प्रोपर्टी आफ़िसको भेज देते हैं--वह भी कभी-कभी। लेकिन एक बातका हम विशेष तौर पर ध्यान रखते हैं--किसी सामानका ताला नहीं टूटना चाहिए, जब तक कि वह ताले खराब ही न हों और ठीकसे बंद न किये गये हों।

भीमसेन--- मेरे एक संबन्धी जो कुछ वर्ष पहले रेलवेकी नौकरीसे रिटायर हुए हैं, मुझसे कह रहे थे कि अगर टोकरीमेंसे आम निकालने हों, तो वजन पूरा करनेके लिए उनकी जगह टोकरीमें पत्थर भर देने चाहिए।

शिक्षक--- यह पुराना तरीक़ा अब बदल गया है। अबहम वज़न पूरा नहीं करते, क्योंकि लोगोंकी शिकायत है कि पत्थरोंसे बाक़ी बचे हुए आम भी खराब हो जाते हैं। जनताकी इच्छाका लिहाज़ तो करना ही चाहिए।

भीमसेन--- ठीक है।

दीनदयाल--- सीलबंद कनस्तरोंमेंसे घी कैसे निकाला जाता है ?

शिक्षक— सन् १९३९ तक तो यह तरीक़ा था कि सील तोड़कर घी निकाल लिया और फिर सील लगा दी। लेकिन महायुद्धके दिनोंमें काम इतना बढ़ गया कि कोई जल्दीका तरीक़ा खोजना पड़ा। आजकल जो तरीक़ा चालू है, वह तो यह है कि एक खुदरे चाक़ूको कनस्तरके जोड़ पर मारकर जितना घी चाहो निकाल लो।

भीमसेन— कीलसे सूराख करके क्यों नहीं निकाला जाता ?

शिक्षक— क्योंकि तब यह नहीं मालूम होगा कि कनस्तर गिर बड़नेसे टूटा है। अच्छा, अब इस विषयको यहीं समाप्त कर देना चाहिए। १४ डाऊन गाड़ी अब आती ही होगी। अब मैं तुम्हें दिखाऊँगा कि टिकट कैसे चेक किये जाते हैं। किसी और दिन मैं तुम्हें मालगोदाम ले जाकर दिखाऊँगा कि फ़रनीचर गाड़ी पर कैसे लादा जाता है, ताकि छोटे-छोटे सफ़रमें भी वह टूटफूट कर बराबर हो जाय। यह हाल उन लोगोंके फ़रनीचरका होता है, जो उसकी हिफ़ाज़तके लिए कुछ नहीं देते। मैं तुम्हें रेलवेके गणितके बारेमें भी बताऊँगा।

[ज़ोरसे घंटी बजती है।]

गाड़ी पिछले स्टेशनसे छूट गई है। चलो, पुलकी सीढ़ियोंके पास चल कर खड़े हों।

[सब विद्यार्थी शिक्षकके पीछे-पीछे चलते हैं। इस प्लेटफ़ार्म पर सुनसान हो जाता है, क्योंकि गाड़ी दूसरे प्लेटफ़ार्म पर आ रही है। पुल के नीचे एक क़ुली सामान ढोनेके ठेलेके ऊपर पड़ा सो रहा है। प्लेटफार्म पर उलटा-सीधा सामान पड़ा है। कुछ क़ुली बीड़ी पी रहे हैं और लापरवाही से सामानकी ओर देख लेते हैं; उनकी बलासे—सामान खो जाए। एक क़ुली सामान सिर पर उठा कर आता है और एक क़ीमती थरमस बोतल को ज़मीन पर गिरा देता है। दर्शक उसके टूटनेकी आवाज़से चौंक जाते हैं, लेकिन क़ुली बड़े इतमीनानसे उसे उठा कर आगे चल देता है—जैसे

कुछ हुआ ही नहीं। दो बौखलाये हुए यात्री एक दूसरेको रोक कर पूछते हैं।]

पहला यात्री—बम्बई एक्सप्रेस कितनी लेट आ रही है ?

दूसरा यात्री—मुझे नहीं मालूम। आपको मालूम है कि भटिंडा मेल आ गई या नहीं ?

पहला यात्री—एक गाड़ी तो अभी छूटी है। कहीं वही तो भटिंडा मेल नहीं थी ?

[दोनों परेशान होकर चले जाते हैं।]

शिक्षक— तुम्हारी रेलवे क़ानूनकी किताबमें लिखा है कि सफ़र पूरा होने पर यात्रियोंको अपने टिकट स्टेशन पर दे देने चाहिए। यह तुम्हारी खुशक़िस्मती ही होगी अगर हर यात्री चुपचाप तुम्हें अपना-अपना टिकट देता हुआ चला जाय। भगतराम, अगर तुम इस ड्यूटी पर हो, तो क्या करोगे ?

भगतराम— मैं इस पुलकी सीढ़ियों पर खड़ा होकर या हममेंसे दो खड़े होकर यात्रियोंसे टिकट लेते जायेंगे।

शिक्षक— [अपना सिर हिलाते हुए] तुम तो बुद्धू हो। दूसरा टिकट चेकर बेकार तुम्हारे साथ फँसा रहेगा। फिर गाड़ीके दूसरी ओर उतरने वाले बग़ैर टिकटके यात्रियोंको पकड़नेके लिए भी उसकी जरूरत पड़ेगी। भीमसेन, तुम क्या करोगे ?

भीमसेन— मैं सीढ़ियोंके ऊपरवाले सिरे पर खड़ा होकर एक दरवाजा बंद कर लूँगा और दूसरे पर खुद मजबूतीसे जम जाऊँगा।

शिक्षक— ठीक है, इसके बाद ?

भीमसेन— तब मैं एक-एक करके लोगोंको बाहर निकलने दूँगा और उनके टिकट होशियारीसे देखता रहूँगा।

शिक्षक— सब नये रंगरूट यही ग़लती करते हैं। रेलवे और अन्य सरकारी दफ़्तरोंमें जो लोग अपना काम इतने ध्यानसे करते हैं, उनके बाल जल्दी ही सफ़ेद हो जाते हैं और पेंशनके समयसे

वर्षों पहले ही वह मर जाते हैं। सफलताका भेद यह है कि ज्यादातर काम तो सरसरी तौर पर आगे बढ़ाया और कभी-कभी वह सरगर्मी दिखाई कि पता लगे वाक़ईमें तुम बड़ी मेहनतसे काम करते हो।

दीनदयाल—— लेकिन अगर किसी ग़लत आदमी पर हाथ पड़ जाय——तो ?

शिक्षक—— मैं वही बतानेवाला था। यह तजरबेसे ही आता है, जो तुम्हें कोई भी नही सिखा सकता। मैं भी तुम्हें वही बातें बता सकता हूँ, जिनसे तुम्हें कुछ सहायता मिलेगी। जब यात्रियोंकी भीड़ होती है, तो लोग कई तरहके टिकट तुम्हें देकर चले जाते हैं। पिछले कुम्भ मेलेमें हमें तक़रीबन एक हज़ार वज़न तौलनेकी मशीनके टिकट मिले, जिन पर लिखा होता है : 'तुम्हारे मित्र अच्छे होंगे', 'तुम्हारी यात्रा अच्छी रहेगी', 'अंत भला तो सब भला' या 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है'। क़रीब तीन हज़ार तो पुराने प्लेटफ़ार्म टिकट थे और सैकड़ों टिकट ग़ाज़ियाबादसे दिल्ली या ओखलासे निज़ामुद्दीन या पूनासे बम्बईके थे। सात सौ विज़िटिंग कार्ड और क़रीब इतने ही सिगरेटके कूपन थे...

[घंटी जोरसे बजती है।]

लो अब गाड़ी आ ही गई। अब तक मैंने जो कुछ कहा, उसका सबूत भी मिल जायगा। अब तुम यहाँ खड़े होकर टिकट चेक करो, और जैसा भी टिकट तुम्हें दिया जाय ले लो। लेकिन जैसे ही मैं इशारा करूँ, उस आदमीको पकड़ लेना।

[गाड़ी आनेकी आवाज सुन कर क़ुली और खोनचे वाले इधरउधरसे आकर प्लेटफार्म पर खड़े हो जाते हैं।]

शिक्षक—— भीमसेन और दीनदयाल, तुम दोनों वहाँ खड़े हो जाओ—— मैं तुम्हारे पीछे खड़ा रहूँगा।

[गाड़ी आती है । पुलके ऊपर भीड़की धकापेल होने लगती है ।]

दीनदयाल— [एक यात्री से] आपका टिकट कहाँ है ?

यात्री— यह लीजिए ।

भीमसेन— [दूसरे यात्री से] टिकट दिखाइए, जनाब ।

यात्री— यह लीजिए, जनाब ।

शिक्षक— [दोनोंके कानमें फुसफुसा कर] अरे, इतने लम्बे-लम्बे वाक्य बोलकर क्यों दम फुला रहे हो ! सिर्फ़ 'टिकट ?' 'टिकट?' कहो ।

दीनदयाल— अच्छी बात है । हम उस आदमीसे टिकट माँगते हैं—वह दुबलापतला और ग़रीब मालूम होता है; उसने जरूर टिकट नहीं खरीदा होगा ।

शिक्षक— यह बात नहीं है । अगर वह बेईमान होता, तो मोटाताजा और अमीर होता । ग़रीब लोग हमेशा टिकट खरीद लेते और केवल मध्यवर्गीय और अमीर वर्गके लोग ही टिकट खरीदनेकी तकलीफ़ नहीं उठाते ।

भीमसेन— [भीड़में एक आदमीकी ओर संकेत करते हुए] वह आदमी कुछ गड़बड़ मालूम होता है—मुझसे निगाह बचा रहा है । उसका टिकट जरूर देखना चाहिए ।

शिक्षक— [मुसकराते हुए] तुम चाहो तो देख लो—लेकिन इसके पास टिकट है । तुमसे वह इसलिए निगाह नहीं मिला रहा है, क्योंकि वह भेंगा है [हँसी] । वह, उस आदमीको देखो, जो क़ुलियों पर बिगड़ रहा है और अपने ढेर सारे सामानकी ओर इशारा कर रहा है । मैं इन धोखेबाज़ोंको अच्छी तरह पहचानता हूँ । भीमसेन, ज़रा उसकी मिज़ाजपुरसी तो करना जाकर ।

भीमसेन— [उसके पास जाकर] टिकट ?

यात्री— [अकड़ कर] क्या ? तुम हो कौन ?

नीम हकीम

[अमरनाथके सोनेका कमरा—अच्छा बड़ा और विधिपूर्वक सुसज्जित—प्रातःकालके सूर्यका प्रकाश खिड़कीके पर्दोंमेंसे छनकर आ रहा है। कोई साढ़े आठ बजे होंगे। अमरनाथ पलंग पर लेटा कुछ बेचैनीसे करवटें ले रहा है। पास रखी मेज पर 'रीडिंग-लैम्प', एक दो किताबें, सिगरेटका डिब्बा तथा चायके जूठे बर्तन पड़े हैं। सुनीति, उसकी धर्मपत्नी आती है]

सुनीति— आप अभी तक लेटे हुए हैं—दफ़्तर नहीं जाना है क्या ?

अमरनाथ— तबीयत कुछ सुस्त है—सोचता हूँ आज आराम ही किया जाय।

सुनीति— रात भर ताश खेलोगे तो तबीयत सुस्त होगी ही।

अमरनाथ— पिछले शनिवारका किस्सा तुम्हें अभी तक भूला नहीं—कई बार माफ़ी भी माँग चुका हूँ।

सुनीति— मुझे आपके ब्रिज खेलनेमें तो कोई आपत्ति नहीं—यही, घण्टा—दो घण्टे...किन्तु रात-रात भर जगना हो तो...

अमरनाथ— फिर वही कहानी—तुम तो समझती हो कि चालीस वर्षका क्या हुआ बूढ़ा हो गया—नौ बजे सो जाना चाहिए, सवेरे उठकर सैर करने जाना चाहिए।

सुनीति— अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना कोई पाप है क्या ?

अमरनाथ— किन्तु कुछ खराबी भी तो हो—तुम तो ऐसे लेक्चर देती हो जैसे कई वर्षोंका रोगी हूँ।

सुनीति— [पलंग पर बैठकर पुचकारती हुई] शुभ बोलो शुभ—[करुण स्वरमें]—मेरी बलासे—आजसे कुछ न कहूँगी... केवल जब छोटे-छोटे बच्चोंको देखती हूँ तो...[आँखोंमें बड़े-बड़े आँसू टपकनेकी राह देखते हैं।]

अमरनाथ— [प्रेमसे उसका हाथ थपक कर] तुम चिन्ता काहेको करती हो; मुझे स्वयं इन चीजोंका ध्यान रहता है—चाहूँ तो अब भी दफ्तर जा सकता हूँ, और शर्त लगाकर कहता हूँ कि आठ घण्टे काम कर लेनेके बाद भी कुछ न हो।

सुनीति— ईश्वर करे आप सदा आरोग्य रहें—आपकी तबीयत जरा भी सुस्त होती है तो मन घबराने लगता है—नहीं-नहीं, तुम दफ़्तर नहीं जाओ...आराम करो...आज भी और कल भी...

अमरनाथ— अरे, शाम तक ठीक हो जाऊँगा। जरा दो चार घण्टे चैन से सोना मिल जाय।

सुनीति— तो मैं आपका नाश्ता यहीं लाती हूँ।

अमरनाथ— क्या कहने, नेकी और पूछ-पूछ।

सुनीति— और हजामतका पानी?

अमरनाथ— नाश्तेके बाद।

सुनीति— बच्चे ढाई बजे तक स्कूलसे नहीं लौटते—तुम नाश्ता करके दो तीन घण्टे चुपचाप सो लो।

अमरनाथ— बहुत अच्छा...

[सुनीति जाती है, अमरनाथ सिगरेट सुलगाता है—किताब उठा कर पढ़ने लगता है—आधा मिनट भी न पढ़ पाया होगा कि माँ आती है।]

माँ— क्यों बेटा बुखार है क्या?

अमरनाथ— नहीं तो, ऐसे ही जरा आराम करनेको मन चाहता है...

माँ— [माथे पर हाथ लगाती फिर गालों पर] कुछ गर्म मालूम होता है।

अमरनाथ— नहीं तो।

माँ— और तुम सिगरेट पिये जा रहे हो...न मालूम तुम लोगोंको क्या हो गया है, अपने स्वास्थ्यका तनिक भी ध्यान नहीं करते।

अमरनाथ— माँ, आज सवेरेसे यह पहला सिगरेट है—दिन भरमें दो-तीन पी लेनेसे तो कोई हानि नहीं होती।

मां-- न होती हो—परन्तु कोई लाभ भी तो नहीं होता—यदि धुएँको बाहर ही निकालना है तो पहले अन्दर ही काहेको ले जाओ..कुछ खाया भी है सुबहसे या सिगरेट पर ही ज़ोर है ?

अमरनाथ— अभी लाती है सुनीति !

मां— तुम मानोगे तो नहीं परन्तु तुम्हारी तकलीफ़की जड़ तो यही है—दिन भर काम करना और खानेमें सुस्ती ।

अमरनाथ— अभी दूध पीऊँगा—मां ।

मां— एक प्याले दूधसे क्या होगा ? आधा तो उसमें पानी मिला होता है...अरे बेटा, तुम्हारे जैसे काम करने वालोंको तो खुराक अच्छी खानी चाहिए...मेरा बस चले तो तुम्हें सुबह उठते ही पराठा, मक्खन और आधा सेर दही खिलाऊँ ।

अमरनाथ— कलसे ऐसा ही करूँगा...

मां— किन्तु जब तक खाओगे नहीं दफ़्तर कैसे जाओगे ? मैंने सुनीतिसे कहा है तुम्हें हलवा बनाकर देवे ।

अमरनाथ— उससे तो पेट खराब होगा...

[घंटी बजती है]

मां— ज़रा देखना तो कौन है ?

[मां आती है और अमरनाथके दोस्त द्वारकादासको साथ लिये आती है]

द्वारकादास— साइकलमें पन्चर था मैंने सोचा आज तुम्हारी मोटरकी सैर करें...

मां— तुम लोगोंको चलना तो जैसे भूल ही गया हो—तभी नित्य नई बीमारियाँ आती हैं—[अमरनाथसे] तुम्हारे पिताजी तो गर्मी-सर्दीमें दफ़्तर पैदल ही जाते थे—आजकल भी प्रातः उठकर पहला काम उनका घूमने जाना है...भगवान् न करे...सुना कभी उनको बीमार, इस उम्रमें भी ।

अमरनाथ— मैं भी सोमवारसे रोज सवेरे घूमने जाऊँगा—माँ, सुनीति को कहो न हमारे दोनोंके लिए नाश्ता लावे...

[माँ जाती है]

द्वारकादास— धन्यवाद ! मैं तो अभी-अभी नाश्ता करके निकला हूँ... कबसे तकलीफ़ है ?

अमरनाथ— कुछ नहीं...शरीरमें थकावट-सी मालूम देती है...एक आध दिन आराम करनेसे ठीक हो जाऊँगा ।

द्वारकादास— चाहे तुमको विश्वास नहीं फिर भी मेरी रायमें डाक्टरको दिखा लेना ही अच्छा है, क्या मालूम किस नामुराद बीमारी के लक्षण हों !

अमरनाथ— मैं इतनी जल्द घबरानेवाला नहीं हूँ—मेरी सेहत अच्छी-भली है और किसी ऐसी-वैसी बीमारीका कोई डर नहीं ।

द्वारकादास— यह तो तुम्हारा विचार है—सम्भव है X-Ray से किसी और गड़बड़ का पता चले—

अमरनाथ— खैर, आज तो आराम करने दो, कल देखा जायगा...

द्वारकादास— नही भइया, क्या मालूम...कल तक बात का बतंगड़ ही न बन जाय—कहाँ है तुम्हारा टेलीफोन ? डाक्टरको पूछूँ ?

अमरनाथ— नहीं-नहीं...डाक्टर-वाक्टरको मत बुलाओ ।

द्वारकादास— वाह ! खूब कहा—तुम क्या समझते हो, तुम बीमार पड़े हो और मैं डाक्टरको दिखाये बिना चला जाऊँ—यह अच्छी मित्रता है ! कहाँ है टेलीफोन ? डाक्टर लाल को कहता हूँ कि अभी आवें...

अमरनाथ— अच्छा भई—तुम्हारी इच्छा, किन्तु उसे बुलाकर क्या करोगे ? टेलीफोन पर ही बात कर लो न...

द्वारकादास— जब तक वह देखेगा नहीं बतायगा कैसे ?

[द्वारकादास जाता है—अमरनाथ लम्बी श्वास लेता है, छाती ठोंकता है, नब्ज देखता है, ज़बान निकाल कर देखनेका यत्न करता है—कुछ चिढ़ सा जाता है...सुनीति नाश्ता लिये आती है]

सुनीति— [ट्रेको मेज पर रखते हुए] कैसी है तबीयत ?

अमरनाथ— अभी तक तो एक मिनट भर चैन नहीं मिला...

सुनीति— यह खा लो—फिर चुपसे पड़ जाओ...

अमरनाथ— यही करूँगा...

[फिर घण्टी बजती है]

[सुनीति जाती है और अपने मामा तथा मामीको साथ लिये आती है]

मामा— [घबराये हुए] क्यों अमरनाथ—क्या तकलीफ़ है ?

अमरनाथ— [नमस्कार करते हुए] नहीं—कुछ नहीं—ज़रा सी थकान है...आप बैठिए न, मामीजी ?

मामी— [अमरनाथके माथे पर हाथ रखकर] पसीना आ रहा है—और कुछ ठण्डा मालूम देता है—कम्बल ओढ़ लो बेटा...

अमरनाथ— अभी लेता हूँ; [मामासे] आप तो अगले हफ़्ते आनेवाले थे न... ।

मामा— क्या तुम्हें मेरा पत्र नहीं मिला—[अमरनाथ सिर हिलाता है] मैं भी कहूँ कि कुछ खास ही कारण होगा, जो तुम स्टेशन पर नहीं पहुँचे...परन्तु मैंने डाकखानेमें अपने हाथसे डाला था...लखनऊ बहुत तपने लगा था, हमने सोचा एक हफ़्ता तुम्हीं लोगोंके पास और रह लेंगे—

अमरनाथ— यह तो आपकी कृपा है ।

मामा— [नाश्ते की ट्रेको संकेत कर] क्या तुम बुखारमें भी यह सब कुछ खाओगे ?

अमरनाथ— एक प्याला दूध ही तो है ? और फिर मुझे बुखार तो नहीं ।

मामा— मैंने अभी कल ही एक स्वास्थ्य-पत्रिकामें पढ़ा है कि अब

डाक्टर लोग दूधको रोगीके लिए आवश्यक नहीं समझते; क्योंकि उससे पेटमें हवा पैदा होती है और अंतड़ियोंमें गाँठ बँध जानेका भय रहता है ...

अमरनाथ— सच ? मेरा तो विचार है कि सब डाक्टर दूधके बारेमें एकमत हैं कि इसके बराबर और कोई चीज नहीं—चाहे बीमारीमें हो चाहे सेहतमें...

मामा— वह पुरानी बातें हैं—यह पत्रिका मैंने आते-आते लखनऊ स्टेशन पर ही खरीदी थी—अमरीकी पत्रिका है । झूठ नहीं कह सकते...दिखाऊँ तुम्हें [मामीसे] जरा मेरे बैगमेंसे निकलना...

अमरनाथ— अच्छा तो एक आध सन्तरा खा लेता हूँ—

मामी— सन्तरा—नहीं कदापि नहीं—बहुत ठण्डा होता है—तुम्हें उबली हुई तरकारीके सिवाय और कुछ नहीं खाना चाहिए...

मामा— यदि मुझसे पूछो तो...

अमरनाथ— [चिढ़ कर] जी नहीं ।

मामा— [अनसुनी करके] मेरी रायमें तो सब खाना बन्द कर देना चाहिए...

अमरनाथ— बिल्कुल बन्द ?

मामा— हाँ, बिल्कुल—खानेसे बोझ होता है और शुद्ध रक्तके प्रवाह में रुकावट होती है—खाली पेट सबसे अच्छा ।

[द्वारकादास अन्दर आता है—अमरनाथ उसका अपने मामा व मामीसे परिचय कराता है—नमस्कार होते हैं]

द्वारकादास— अभी आयगा डाक्टर—अच्छा गुणी आदमी है...और मैंने दफ़्तरसे छुट्टी ले ली है । तुम्हें अकेला छोड़ जाने को दिल नहीं मानता...

अमरनाथ— मेरे पास काफ़ी लोग हैं—तुम काहेको अपना दिन बरबाद करोगे...

द्वारकादास—दफ़्तरमें ऐसा कौन-सा जरूरी काम है जो कल तक नहीं रुक सकता—हम काम करते हैं अपनी खुशीके लिए न कि जान मारने को...

अमरनाथ—[हताश होकर] जैसी तुम्हारी इच्छा...कोई ज़रूरी तो न था...

द्वारकादास—यदि तुम्हारी तबीयत अच्छी हुई तो दोपहरको ही चला जाऊँगा।

मामा—सुनीति, यह नाश्तेकी ट्रे उठवा दो—आज इन्हें कुछ न खाना चाहिए...

अमरनाथ—एकाध टोस्टसे क्या होता है ?

मामा—न, न, कदापि नहीं...

सुनीति—मामाजी, यदि इनकी तबीयत चाहती है तो थोड़ा-सा खा लेनेमें क्या हर्ज है ?

मामा—मुझे तुम लोगोंके यह नये तरीक़े पसन्द नहीं कि रोगी जो चाहे खाने दो...उसका तो जी चाहेगा "आइसक्रीम" खाऊँ—कबाब खाऊँ—तो क्या मैं खाने दूँगा...नहीं...जब तक मैं इस घरमें हूँ, यह नहीं होने दूँगा, और जब तक अमर बिल्कुल स्वस्थ नहीं हो जाता, मैं कहीं जानेका भी नहीं।

अमरनाथ—आप सफ़रके बाद थके हुए होंगे—ज़रा स्नान इत्यादि कर लीजिए।

सुनीति—हाँ, आइए—आपका सामान कोनेवाले कमरेमें रखवा दिया है।

मामा—तुम मेरी चिन्ता न करो—अमरनाथकी सेहत मुझे अपने आरामसे बहुत बढ़कर है। [जेबमेंसे एक बोतल निकालता है] देखो जी, तुम यह तीन गोलियाँ तो अभी खा लो... सुनीति थोड़ा गर्म पानी लाओ तो...और मैं शर्त लगाकर कहता हूँ कि आधे घण्टेके अन्दर-अन्दर अच्छे हो जाओगे।

अमरनाथ— कैसी गोलियाँ हैं ये ?

मामा— यह पीछे बताऊँगा...पारेको एक विशेष प्रकारसे तैयार किया गया है। सुनीति लाना गर्म पानी...

अमरनाथ— गर्म पानीकी जगह चाय जो पी लूँ तो ?

मामा— [कठोरतासे] : नहीं...सुनीति लाओ ?

[सुनीतिको विवश होकर जाना पड़ता है]

मामा— यह गोलियाँ सदा सफल ही हुई हैं :

मामी— किन्तु देमराज विचारेके तो सारे शरीर पर दाने-दाने निकल आये थे न !...

अमरनाथ— [घबरा कर] हैं—क्या कहा ?

मामा— नहीं—कुछ नहीं...इससे तो बल्कि यह विश्वास हो जाता है कि दवाई असर कर गई—

[सुनीति पानीका गिलास लिये जाती है]

अमरनाथ— मामाजी, गोलियोंके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद—परन्तु अभी डाक्टर जो आ रहा है...

मामा— मुझे इन एलोपैथिक डाक्टरों पर तनिक भी विश्वास नहीं.... इनकी अंग्रेजी दवाइयाँ हम हिन्दुस्तानियोंको माफ़िक नहीं आतीं।

अमरनाथ— मैं भी उतना ही देशभक्त हूँ, जितने आप, शायद कुछ अधिक। परन्तु मेरा यह विश्वास है कि मानव शरीर, चाहे अफ्रीकाके हब्शीका हो चाहे रूसीका, चाहे चीनी व जापानी का, चाहे अंग्रेज तथा हिन्दुस्तानीका, उन्हीं पाँच तत्वोंका बना है और बीमारीके कीड़े उत्तर दक्षिण तथा पूर्व पश्चिम नहीं देखते।

मामा— यह तो तुम्हारा विचार है न—यदि तुमने इन साम्राज्य-वादी देशोंका इतिहास ध्यानसे पढ़ा है तो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ये एलोपैथिक दवाइयाँ बाहर भेजनेका अभिप्राय

यही था कि पिछड़े हुए देशोंका धन अपने पास इकट्ठा किया जाय—अब जब कि हिन्दुस्तान आज़ाद है...

अमरनाथ— [व्यंग्य-मुसकराहटसे] जय हिन्द ! जय भारत !

मामा— हां, तुम नौजवानोंमें ऐसा ही उत्साह होना चाहिए। लो अब खा लो यह गोलियां।

[अमरनाथ हथेली पर गोलियाँ रखता है—आसपास खड़े मित्र-सम्बन्धियोंको सम्बोधित कर, बेधड़क तरीक़ेसे गोलियाँ निगल लेता है—मानो कोई वीर राजपूत जानकी बाजी लगाकर रणमें कूद पड़े]

अमरनाथ— आह !

मामा— कुछ फ़र्क मालूम हुआ ?

अमरनाथ— अभी तक तो नहीं।

मामा— अभी देखो दो-चार मिनटमें फ़र्क मालूम होने लगेगा—यह हमारे प्राचीन आयुर्वेदकी सबसे उत्तम दवा है—पारेको संखियेमें मिलाकर गोबरमें जलाया जाता है। [अमरनाथ कांप उठता है] बहुत लाभदायक है। ठीक प्रकारसे बनाई गई हो तो हर तरहके रोगको नष्ट कर देती है—इसे बनाते समय केवल एक चीज़का विशेष ध्यान रखना चाहिए—संखिया चालीस दिन तक बकरीके दूधमें भीगा रहना चाहिए नहीं तो रोगीको जानका खतरा रहता है।

अमरनाथ— सच ! कैसी अद्‌भुत चीज है—यह गोलियाँ तो ठीक प्रकार से बनी हैं न ?

[सुनीतिका चेहरा पीला पड़ जाता है]

मामा— निस्सन्देह। तुम्हारे लिए तो मैंने नई बोतल खोली है...

अमरनाथ— [माथेका पसीना पोंछकर] यदि जीता रहा तो सारी उम्र आपका आभारी रहूँगा।

द्वारकादास— [कुछ भयभीत] डाक्टर साहब नहीं आये अब तक... फिरसे देखूँ ?

मामा— [उसकी बात काट कर, अमरनाथसे] नहीं, मुझे धन्यवाद देनेकी आवश्यकता नहीं, मेरा कुछ स्वभाव ही ऐसा है, मैं किसीको रोगसे पीड़ित नहीं देख सकता । जी चाहता है उसका वहीं अन्त कर दूँ ।

अमरनाथ— किसको, रोगी को ?

मामा— नहीं—पीड़ाको ?

अमरनाथ— [ठण्डी साँस लेकर] धन्यवाद—क्या मैं अब कुछ खा सकता हूँ ? खाली पेट संखिया खाना कभी लाभदायक नहीं हो सकता...

मामा— इन गोलियोंके बाद तीन दिन तक कुछ नहीं खाना । फिर हर मंगलवारको आधा सेर दूधमें आधा पाव घी मिलाकर पी जाओ...यह तीन महीने तक करो ।

अमरनाथ— हे भगवान् ! डाक्टर आ जाय तो शायद कुछ आराम मिले—

[घण्टी बजती है]

द्वारकादास—डाक्टर लाल होगा...अभी लाता हूँ उसे ।

[जाता है और डाक्टरको बड़े गर्वके साथ लाता है]

डाक्टर— [सीधा रोगीके पलंगके पास जाकर] कैसी तबीयत है ?

अमरनाथ— कोई ऐसी बुरी तो नहीं ।

डाक्टर— जरा जबान निकालिए [अमरनाथ निकालता है] हूँ ! [सुनीतिसे] एक चम्मच मंगवा दीजिए—गला देखना चाहता हूँ ।

[देखता है]

अमरनाथ— आ-आ-आ-आ

डाक्टर— गला काफ़ी खराब है, मैंने पहले ही यही सोचा था—आजकल कुछ हवामें ही है ।

[स्टेथस्कोप लगा कर अमरनाथकी छाती देखता है–पेट दबाता है]

सुनीति— [भर्राई हुई आवाज़में] गला ही है डाक्टर साहब या कुछ ज़्यादा।

डाक्टर— नहीं, घबरानेकी कोई बात नहीं—मामूली तकलीफ़ है... एक इन्जेक्शन देता हूँ–शाम तक अच्छे हो जायँगे।

[जेबमेंसे सिरिंज निकालता है]

द्वारकादास— देखा अमर—मैं ठीक कहता था न...दिखा लेना अच्छा होता है...[डाक्टरको सम्बोधित कर] आपकी सहायता करूँ?

डाक्टर— हाँ, धन्यवाद...और मेरी रायमें आप लोग इनके पास बैठ कर बातें न करिए। इन्हें आरामकी जरूरत है।

मामा— हम लोग तो घर हीके हैं। आप समझ सकते हैं डाक्टर साहब हमारे दिल पर क्या बीत रही है इस वक़्त। हम इसे इस हालतमें अकेला कैसे छोड़ सकते हैं?

डाक्टर— परन्तु आपके यहाँ बैठे रहनेसे रोगीको कोई लाभ तो नहीं होता।

मामा— कैसे नहीं? हम इधर-उधरकी बातें करके उसका मन बहलायँगे।

मामी— [मामासे] जैसे डाक्टर साहब कहते हैं वैसे ही कीजिए न। उनको मालूम है इन्हें कैसी तकलीफ़ है और उसके लिए कैसा इलाज होना चाहिए?

[अमरनाथकी माँ अन्दर आती है—इतने लोगोंको इकट्ठा हुए देख कुछ घबराकर, चुप खड़ी रहती है]

मामा— बस यही जानते हैं यह लोग, चाहे दाँतका दर्द हो...चाहे खुज़ली, चाहे पैरमें मोच...यह तो पेन्सिलीन ही ठूँसेंगे!

अमरनाथ— डाक्टर साहबके काममें बाधा न डालिए—इनका समय बहुत

क़ीमती है—इनकी यह भी बड़ी कृपा है कि इतनी जल्दी आ गये।

[मामाको यह वाक्य चुभते हैं मानो अमरनाथने उनका अनादर किया है, परन्तु जब तक डाक्टर इन्जेक्शन लगाता है—ज़बान बन्द ही रखते हैं]

डाक्टर— [सुनीतिसे] मुझे शामको खबर भेजियेगा।

सुनीति— जी अच्छा; और खानेके लिए ?

डाक्टर— जो चीज़ खाना चाहें, दीजिए।

मामा— [विस्मयसे] सच ?

डाक्टर— हाँ, जो चाहें खायें, केवल खटाई और मिर्चका ध्यान रखियेगा।

[घण्टी होती है]

अमरनाथ— [व्यंग्यसे] सुनीति, देखो तो अब कौन है ? मैंने किसी पब्लिक मीटिंगका एलान तो नहीं किया था।

[सुनीति जाती है]

मामी— [मौक़ा मिलते ही] गलेके लिए तो हमारा देशी इलाज सबसे अच्छा है...हल्दी और प्याजकी पुलटिस बाँधो—देखो कितनी जल्दी अच्छा होता है।

मामा— हाँ, बात तो ठीक है और फिर कितना सस्ता—न हींग लगे न फिटकरी...क्या विचार है डाक्टर...आपका।

डाक्टर— क्या कहूँ साहब, आप तो मजबूर करते हैं। प्याज भी तो दस आने सेरके हिसाब बिकते हैं।

[मामाका तीव्र जवाब सुननेसे पहले ही दरवाजा खुलता है और सुनीति और बलदेवप्रसाद, अमरनाथके दूसरे दोस्त, अन्दर आते हैं]

बलदेव— हमें क्या मालूम तुम इतने बीमार हो ? खबर तो की होती... यह तो द्वारकादासने छुट्टीके लिए टेलीफोन किया तो हमें चिन्ता हुई।

अमरनाथ— [चिढ़कर] बीमार तो नहीं हूँ, परन्तु हैरान हूँ कि अब तक ज़िन्दा कैसे हूँ और होश भी ठिकाने ही मालूम देते हैं—अरे कोई कुर्सियाँ, कोई बेञ्च वग़ैरह लाओ, कोई दरियाँ बिछाओ, जनताके बैठनेके लिए जगह तो बनाओ।

बलदेव— [कटाक्ष न समझकर] गला खराब मालूम होता है तुम्हारा, आवाज भारी है।

अमरनाथ— सुबह तो अच्छा भला था—तबसे बोलना बहुत पड़ रहा है।

बलदेव— कोई दवाई खाई क्या ?

अमरनाथ— हाँ, थोड़ा-सा संखिया, कुछ पारा, कुछ गोबर, कुछ पेन्सिलीन.. कुछ बकरीके दूधका सत..प्याजकी बुकनी खानेको था।

बलदेव— न, न, प्याज मत खाना—होम्योपैथिक दवाईमें लहसुन और प्याजकी मनाही है।

अमरनाथ— तो क्या तुम भी अपनी दवाई खिलाओगे...लाओ भइया, तुम्हें भी क्यों निराश करूँ ?

बलदेव— [बोतल निकालकर] छः गोलियाँ, तीन-तीन घण्टे बाद।

अमरनाथ— चौबीस एकदम खाकर दिनभरके लिए छुट्टी न कर दूँ।

बलदेव— हम होम्योपैथीमें छोटी-छोटी खुराक देते हैं।

मामा— एलोपैथिक डाक्टरोंसे तो बहुत अक़्लमन्द हो।

डाक्टर— [तन कर] क्या कहा आपने ?

बलदेव— मैं डाक्टर तो नहीं हूँ, परन्तु मैंने होम्योपैथीकी बहुत-सी किताबें पढ़ रखी हैं—कितना आकर्षण है होम्योपैथीमें—[डाक्टरसे] यूनानी, आयुर्वेदिक तथा आप लोगोंकी दवाइयाँ बहुत-सी चीज़ोंको मिलाकर उनका सत निकालनेसे बनती हैं। हमलोग सोचते हैं कि उसे जैसे-जैसे पानीमें घोलते जाओ, उसकी ताक़त बढ़ती जाती है। एक कण, एक सेरसे ज़्यादा असर करता है।

अमरनाथ— [व्यंग्यसे] और अणु, कणसे भी अधिक—हीरोशिमाकी तवाहीका कारण अणु-बम ही तो था ।

डाक्टर— [कटाक्षसे] तो अगली लड़ाई होम्योपैथिक लड़ाई ही होगी [खिलखिला कर हँसता है] हा...हा...हा...

अमरनाथ— [प्रभावित रूपसे] आप लोग मेरी बीमारीमें इतनी दिल-चस्पी ले रहे है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ—परन्तु मैं सुवहसे बोल-बोल कर बहुत थक गया हूँ और आराम करना चाहता हूँ । आशा है आपको इसमें कोई आपत्ति न होगी ।

बलदेव— [अमरनाथकी वातका कोई ध्यान न करके] तुम डाक्टर लोग जो चाहे कहो परन्तु जो सत्य है उसको कौन छिपा सकता है—अच्छा वताओ तुम्हारे मरीजोंमेंसे कितने फ़ीसदी मौतके मुंहमें जाते हैं ?

डाक्टर— [कुछ विस्मित] वाह यह भी क्या सवाल है ? कुछ वदक़िस्मत लोग जो हमें समय पर नहीं बुलाते मृत्यु-लोकको जाते ही हैं—परन्तु इतने तो नहीं होते कि डायरी रखूँ ?

अमरनाथ— [उत्तेजित हो] जरा, मेरी भी तो सुनो !

बलदेव— [कुछ परवाह न कर] डाक्टर, आप डायरी रखें चाहे न रखें, संसारको कोई फ़र्क नहीं पड़ता—ब्राजीलके प्रोफेसर डानसनने इस विषय पर जो आँकड़े इकट्ठे किये हैं वह सब को मालूम हैं । उनका कहना है कि जितने लोग मरते हैं—उनमेंसे ४० प्रतिशत एलोपैथिक डाक्टरोंके हाथों, २० प्रतिशत आयुर्वेदके हाथों, २० प्रतिशत यूनानियोंके, १० प्रतिशत होम्योपैथोंके और १० तिशत अपनी मौत मरते हैं ।

अमरनाथ— [तड़पकर] इस हिसाबसे तो मेरी मौत ९० प्रतिशत निश्चित हो गई है । सवेरे जो दवाइयाँ खायी हैं उनसे ५० प्रतिशत तो अव तक मर चुका हूँ—बाक़ी मौत भी धीरे-धीरे

आती मालूम दे रही है। सुनीति, मेरी इन्शोरेन्सके सब काग़ज मेरी मेजके सबसे नीचे वाले खानेमें बन्द पड़े हैं—मेरे बच्चोंका ध्यान रखना...माँ...।

माँ— [उसके पास जाकर] क्या कह रहे हो अमर—होश करो... शुभ बोलो। डाक्टर साहब, मेरे बच्चेको देखिये...!

सुनीति— [अन्य लोगोंसे] चलिए आप लोग सब बैठकमें चलिये—इनको आराम करने दीजिए।

डाक्टर— [उत्तेजित हो बलदेवसे] आपको यह भी मालूम है कि जब भी किसी होम्योपैथ, वैद्य, हकीमके घरमें बीमारी आती है तो मुझे ही बुलाते हैं...इससे क्या साबित होता है?

अमरनाथ— इससे यह साबित होता है कि अब मुझे उठकर कुछ करना चाहिए।

[घण्टी बजती है]

अब यह कौन है?...भगवान्के लिए उनसे कहो कि इस शोकी सीटें सब बुक हो चुकी हैं—अब शामको साढ़े छः बजेके शोमें आवें।

[घण्टी फिर बजती है—ज़ोरसे दरवाजेको पीटनेका शोर होता है—दरवाजा धमाकेके साथ खुलता है और बच्चे चिल्लाते हुए आते हैं]

सुनीति— [घड़ी देखकर] आज यह लोग साढ़े ग्यारह बजे ही आ गये!

[एक लड़का और एक छोटी लड़की दौड़ते हुए अन्दर घुसे आते हैं]

लड़का— छुट्टी! छुट्टी!! छुट्टी हो गई [ताली बजती है] हुर्रे! हुर्रे!!

अमरनाथ— [सिर पर हाथ रखकर] हे भगवान्!

सुनीति— [विकल होकर] उनको भी स्कूल आज ही क्यों बन्द करना था...

लड़का— पापा, मेरे साथ क्रिकेट खेलोगे न...

लड़की— [बापसे लिपट कर] नहीं हम चिड़ियाघर जायेंगे... है न पापा ?

[इस समय कमरे में खूब शोर है—प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी डाक्टरी बघार रहा है—मामी अपनी पुलटिस पर जोर दे रही हैं—मामा अपनी गोलियों पर...अमरनाथ उठ कर अलमारीके पास जाता है और कपड़े निकालता है]

सुनीति— आप क्या कर रहे हैं ?...

अमरनाथ— मुझे चैन और आरामकी बहुत जरूरत है और अभी...। इस लिए मैं आफ़िस जा रहा हूं—आफ़िस...समझी... कुछ चैन मिल सकता है तो वहीं ।

हीरोइन

हीरोइन

[ऐलोरा फिल्म कंपनीके डायरेक्टर रूपेन्द्रस्वरूपका कमरा। कमरेमें वह सब सामग्री उपस्थित है जो इतने बड़े कलाकारकी सुविधाके लिए आवश्यक है। एक बड़ी मेज, दो तीन टेलीफोन, कुछ सचित्र फिल्मी पत्रिकाएँ, कुछ नायक नायिकाओंके फोटो, एक दो सुन्दर सी ऐश ट्रे इत्यादि। सामने बैठे सेक्रेटरीको कुछ लिखा रहे हैं। टेलीफोन बजता है। सेक्रेटरी उठा कर कानसे लगाता है, फिर उसे रूपेन्द्रस्वरूप की ओर बढ़ाता है।]

रूपेन्द्र— कौन है?

सेक्रेटरी— किसी लड़कीकी आवाज है।

रूपेन्द्र— [टेलीफोनमें] हैलो...जी, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ, आपका शुभ नाम क्या है?...जानकी! जानकी कौन?... अच्छा, मुरादनगरमें मिली थीं...हाँ, हाँ ठीक है। तो आप इस समय कहाँ हैं?...वह तो हमारे स्टूडियोसे पाँच मिनिट का रास्ता है। आप आ जाइए...हाँ, सीधे यहीं आइए। फोन रख देता है, [दूसरा टेलीफोन, जो स्टूडियोके अंदर ही काम करनेवालोंके लिए है, उठाता है और नंबर घुमाता है।]

रूपेन्द्र— [टेलीफोनमें] मुकुलेशसे कहना जरा मेरे पास आवे। [टेलीफोन रखकर सेक्रेटरीसे] बस, तुम यह लेटर टाइप करके ले आओ।

[सेक्रेटरी जाता है। मुकुलेश आता है]

रूपेन्द्र— आइए, मुकुलेश साहब। आज एक नई मुसीबत आनेवाली है।

मुकुलेश— क्यों, क्या हुआ ?

रूपेन्द्र— वही गड़बड़ जो एकआध बार पहले भी कर चुका हूँ। क्या बताऊँ, कुछ समझमें नहीं आता। मालूम नहीं नशेमें था या क्या बात थी...

मुकुलेश— आखिर हुआ क्या है ?

रूपेन्द्र— भई, अभी अभी किसी जानकीका टेलीफोन आया था। मुरादनगरसे आई है। कहती है कि पिछले महीने जब मैं कुछ नये चेहरोंकी खोजमें वहाँ गया था तो उससे भी भेंट हुई थी और मैंने कहा था कि बंबई आओ तो तुम्हें अपनी किसी पिक्चरमें पार्ट दूँगा। मुझे तो इस समय कुछ भी याद नहीं आ रहा है।

मुकुलेश— अब चिन्ता करनेसे क्या लाभ ? आने दीजिए। जब मुसीबत मोल ले ही ली तो उससे निबट भी लेंगे।

[जानकी आती है—युवा, सुन्दर, सुडौल, आकर्षक]

रूपेन्द्र— [कुरसीसे उछलकर] ओ हो, आप हैं ! बहुत प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर। कब आईं आप ?

जानकी— मैं कल दोपहरको आई थी। सोचा, सबसे पहले आप हीसे मिल लूँ।

रूपेन्द्र— यह तो आपकी बड़ी कृपा है। कहिए, आपके पति महाशयने तो आज्ञा दे दी ? आप कहती थीं न उन्हें सिनेमासे बहुत चिढ़ है।

जानकी— नहीं, जी, वह इतनी आसानीसे माननेवाले नहीं है।

रूपेन्द्र— तो आपके साथ आये हैं क्या ?

जानकी— नही, मैं उनसे लड़कर आई हूँ।

रूपेन्द्र— [मुसकरा कर] यह तो बहुत अच्छा किया आपने। अब आप बिना किसी बंधन व संकोचके अपना फिल्मी जीवन आरम्भ कर सकती है, वैसे भी आप सिनेमामें काम करतीं

तो पतिको तो कभी न कभी त्याग ही देतीं। आपने पहलेसे ही फैसला कर लिया—अच्छा किया; बहुत अच्छा किया। हाँ, आप इनसे मिलिए। यह है मुकुलेशचन्द्र, हमारे असिस्टेण्ट डायरेक्टर। [मुकुलेश और जानकी परस्पर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं।] तो, मुकुल साहब, आप अपना काम कीजिए। शूटिंग करवा रहे थे शायद ?

मुकुलेश— जी, हाँ।

रूपेन्द्र— तो आप चलिए, मैं इन्हे भी अभी लाता हूँ—स्टूडियो दिखाने के लिए।

[मुकुलेश उठ कर जाता है। जानकी कमरेके चारों ओर दृष्टि दौड़ाती है।]

रूपेन्द्र— बंबई पसन्द है आपको ?

जानकी— एक ही तो बढ़िया शहर है हिन्दुस्तानमें। पसन्द कैसे न हो ?

रूपेन्द्र— आपने यहाँके स्टडियो देखे हैं ?

जानकी— वही तो देखने आई हूँ।

रूपेन्द्र— आप तो फिल्म जगत्‌की सबसे बड़ी रत्न बनेंगी। आपका भविष्य उज्ज्वल है। आपको सभी नायिकाओंसे ऊँचा न बना दिया तो बात रही !

जानकी— आपके प्रोत्साहनहीने तो मुझे सिनेमामें आनेको उत्साहित किया है।

रूपेन्द्र— इसमें कोई शक नहीं। [रीझकर] आपका रूप लावण्य जनताको ऐसा मोह लेगा कि क्या कहूँ ! [जानकी शरमा कर आँखें नीची कर लेती है।] कैसी सुन्दर लग रही हैं आप इस समय ! और यह हलका फीरोजी रंग कैसा खिल रहा है आप पर ! बस, थोड़ा सा परिश्रम करना पड़ेगा आपको, फिर देखिए आपका यश कहाँ-कहाँ तक फैलता है।

जानकी— यह तो आपकी कृपा है।

रूपेन्द्र— बस, आपका सहयोग चाहिए; सब काम ठीक हो जायगा। आप ठहरी कहाँ है ?

जानकी— यही पास ही एक होटलमें।

रूपेन्द्र— आपको वहाँ कष्ट तो नही ? मेरे पास अच्छा बड़ा घर है। मै आपको एक दो कमरे दे सकता हूँ—बिलकुल अलग से।

जानकी— धन्यवाद, अभी तो मुझे कोई कष्ट नही। आवश्यकता होने पर आपसे कह दूँगी।

रूपेन्द्र— हाँ, हाँ, जब भी आपको किसी प्रकारकी कोई कठिनाई हो आप निस्सकोच मेरे पास आइए। मै सब ठीक करवा दूँगा। अभी जरा मुझे एक मीटिंगमे जाना है। मै कोई आधे घंटे तक लौटूँगा। तब तक मै अपने पबलिसिटी डायरेक्टरको आपके पास भेजता हूँ। आप उससे भी मिल लीजिए।

[जाता है। कुछ देरमें एक व्यक्ति सिगरेटका धुआँ उड़ाता हुआ अन्दर प्रवेश करता है। यही है पबलिसिटी डायरेक्टर—एक भड़कीला नौजवान जिसके रोम रोममें स्फूर्तिका आभास है।]

पबलिसिटी डायरेक्टर—तो आप हैं श्रीमती जानकी ?

जानकी— जी।

प० डा०— क्षमा कीजिए इस धृष्टताके लिए, परंतु यह नाम हमारे यहाँ नही चलेगा। हमें तो कोई सुन्दर सा, मधुर सा नाम चाहिए, जिसमें कुछ विलक्षणता हो, कुछ अनूठापन हो, जो लोगोंको नवीन सा लगे। [सिर खुजलाता है] कंचन कैसा रहेगा ? नही, कंचनलता। नही, यह भी नही। तो फिर रंजना ? ऊँ हूँ, अंजना ? हाँ, अंजना अच्छा नाम है। क्यों आपका क्या विचार है ? [जानकी चुप रहती है।] देखिए, आजसे आपका नाम अंजना हो गया।

जानकी— तो मै अपने नामका क्या करूँ ?

प० डा०— मातार्जीको पत्र लिखते समय अपने ही नामसे हस्ताक्षर कर लीजिएगा। [जानकी कुछ घवरा सी जाती है, परन्तु पवलिसिटी डायरेक्टर उसे वहुत सोचनेका समय नहीं देता।] अच्छा देखिए, फिल्मी नाम तो आपका चुन लिया। मैं फोटोग्राफरको भी वुलवा लेता हूँ। वह आपके सौंदर्य, आकृति व आकर्पणके ऐसे ऐसे फोटो उतारेगा कि आपकी शोभा सौगुनी होकर चमकेगी। तव तक आप मुझे अपने वारेमें दो चार वातें वता दीजिए। आपको कौन सा रंग सवसे प्रिय है?

जानकी— लाल।

प० डा०— आपको कौनसा काम सवसे अधिक रुचिकर मालूम होता है?

जानकी— कैसा काम? समझी नहीं।

प० डा०— मैं पूछ रहा था आपकी हावी क्या है?

जानकी— कशीदा काढ़ना।

प० डा०— आप विवाहित हैं?

जानकी— हाँ।

प० डा०— आपका घरेलू जीवन सुखमय है?

जानकी— कभी था, अव नहीं है।

प० डा०— आपको कौन-सी मिठाई सवसे अधिक पसंद है?

जानकी— रसगुल्ले।

प० डा०— क्या आपने किसी सौन्दर्य-प्रतियोगितामें भाग लिया है?

जानकी— नहीं। परन्तु इन सव प्रश्नोंका मेरे अभिनयसे क्या संवन्ध है?

प० डा०— आप देखेंगी कि आपके वारेमें ऐसे ऐसे अपूर्व लेख लिखूँगा कि आपको विश्वविख्यात नायिका न वना दिया तो कहिएगा। वच्चे वच्चेकी जवान पर आपका नाम होगा। नवयुवकोंके अनगिनत पत्र आपके नाम आयेंगे। कोई पत्रिका ऐसी न होगी जिसमें आपका फोटो न हो। जिस रास्तेसे आप गुजरेंगी

दर्शकोंकी भीड़ खड़ी रहेगी। [जानकी उसकी ओर चकित नेत्रोंसे देखती है। पब्लिसिटी डायरेक्टर जरा आवाज नम्र कर के कहता है।] परन्तु इसमें आपको सहयोग देना होगा। जैसे मैं कहूँ आप करती जाइए। [जानकी उस पर प्रश्नात्मक दृष्टि डालती है।] हाँ, ठीक कह रहा हूँ। फिल्म तो चाहे डायरेक्टर ही बनाते होंगे, परन्तु अभिनेत्रियाँ तो हम ही बनाते हैं।

जानकी— [व्यंग्यसे] समझी !

प० डा०— किसीको बिगाड़ना या बनाना हमारे बायें हाथका खेल है। किन्तु आप चिन्ता न कीजिए। आपका सितारा ऐसा चमकेगा कि देखने वालोंकी आँखें चौंधिया जायेंगी।

जानकी— इस सद्भावना और सहानुभूतिके लिए धन्यवाद।

[पब्लिसिटी डायरेक्टर घंटी बजाता है। चपरासी आता है।]

प० डा०— [चपरासीसे] जरा फोटोग्राफर साहबको बुलाना।

[चपरासी जाता है।]

प० डा०— [रसिकतासे] आप कहाँ ठहरी हैं ?

जानकी— यहीं पास ही एक होटलमें हूँ।

प० डा०— आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं है वहाँ ? वैसे तो मैं आजकल घरमें अकेला ही हूँ। और घर भी अच्छा बड़ा है, आप चाहें तो वहाँ आकर रह सकती हैं। अगर चाहें तो एक अलग कमरेमें रह सकती हैं। मेरी तरफ़से तो सारे घरको ही अपना समझिए। मैं तो अपना बहुत-सा समय घरके बाहर ही गुजारता हूँ।

जानकी— अभी तक तो मैं बड़े आरामसे हूँ।

[दरवाजा खुलता है। फोटोग्राफर आता है।]

प० डा०— आइए, सलीम साहब, इनसे मिलिए। हमारी भावी, होनहार नायिका मिस अंजना। मैं इनके बारेमें एक लेख

तैयार कर रहा हूँ। उसीके साथ दो चार फोटो भी प्रकाशित करना चाहता हूँ। तुम ऐसे फोटो उतारो कि देखने वाले दंग रह जायें।

फोटोग्राफर—[अब तक जानकीकी रूपरेखाको निर्निमेष नेत्रोंसे देख रहा था] आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहिए। ऐसा फोटो खींचूँगा कि दुनिया देखती रह जायगी।

प० डा०— अच्छा, तो मैं चलता हूँ। [जानकीसे] अभी आपकी एक छोटी सी जीवनी लिख कर लाता हूँ। आप पढ़ेंगी तो देखेंगी कि मेरी क़लममें क्या जादू है।

[जाता है।]

फोटोग्राफर—[आवाज़ देता है] चपरासी !

चपरासी— [बाहरसे आकर] हुजूर !

फोटोग्राफर—देखो, कैमरा, लैंप, पीछे रखनेके लिए परदे इत्यादि लाओ—जल्दी।

[चपरासी जाता है।]

फोटोग्राफर—[अंजनासे] मैं ज़रा देखना चाहता हूँ कि किस एंगिलसे आपका फोटो अच्छा आयगा। जरा दायीं ओर देखिए तो... अब ज़रा बायीं तरफ़...ज़रा गरदन ऊँची कीजिए...ज़रा नीचे देखिए। [जानकी यह सब कुछ अप्रसन्नतापूर्वक करती है।] क्षमा कीजिए, आपको कष्ट हो रहा है, परन्तु विवश हूँ। देखना चाहता हूँ कि किस एंगिलसे फोटो लिया जाय तो सबसे अच्छा दिखाई देगा। हाँ, तो ज़रा बायाँ कंधा टेढ़ा करके देखिए। यह अच्छा है। इधर कमरके पाससे साड़ी ज़रा ठीक कर लीजिए ताकि चोलीकी काट अच्छी दिखाई दे। एक बात और—अगले फोटोके लिए चोली ऐसी पहनिएगा जिसके गलेकी काट कुछ नीची हो; इसकी जरा ज़्यादा ही ऊँची है। क्षमा कीजिए, आपको बहुत

परेशान कर रहा हूँ। अच्छा, ज़रा अपना पाँव तो आगे बढाइए...नहीं, ऐसे नहीं, जरा टेढ़ा करके—ऐड़ी भी दिखाई दे और...हाँ, ऐसे। [भावुकतासे] क्या कहूँ, मिस अंजना, आप जैसी सूरत कभी पहले नहीं देखी; कैसा साफ़ रंग है, कैसी मदभरी आँखे, मुखकी आकृति कैसी सुन्दर है। आपमें वे सब गुण हैं जो एक सफल और प्रसिद्ध नायिकाके लिए आवश्यक हैं। जरा मुसकराइए तो। हाँ, ज़रा सा और। ऐसा फोटो आयगा कि सुरैया और नरगिसके घरमें हाहाकार मच जायगा।

जानकी— आप तो हवामें महल बना रहे हैं।

फोटोग्राफर—नहीं, मैं हवाई घोड़े नहीं दौड़ा रहा हूँ। यहाँ खेल ही सारा फोटोग्राफीका है। डायरेक्टर क्या कर सकता है और पबलिसिटी वाला भी क्या कर सकता है जब तक कि लोगोंके दिलमें उसकी साक्षात् मूर्त्ति न समा जाय। यह फोटोग्राफी का ही कमाल है। ऐसे ऐसे एंगिलसे फोटो उतारूँगा कि मालूम हो कोई अप्सरा स्वर्गसे उतर आई है। [ज़रा धीमेसे] परन्तु इसके लिए आपको सहयोग देना होगा। [जानकीके माथे पर भृकुटी देख कर] अब तक तो किसीने कैमरामैनसे बिगाड़ कर कुछ लिया नहीं। पार्वती ज़रा शान दिखाने लगी थी। मैंने उसके फिल्मको ऐसा बिगाड़ा कि कहीं भी दो दिनसे अधिक नहीं चला।

जानकी— सच? उस बेचारीको कितनी ठेस पहुँची होगी! मेरी तो हिम्मत नहीं होती काम करने की।

फोटोग्राफर—आपके साथ कोई ऐसे थोड़े ही करूँगा। घबराइए नहीं। इधर आइए, ज़रा लाइटके सामने बैठिए। ये फोटो शाम तक तैयार हो जायँगे। कहिए, आपके पास कहाँ भिजवाऊँ या स्वयं लेता आऊँ?

जानकी— मैं यहाँ निकट ही एक होटलमें ठहरी हूँ ।

फोटोग्राफर—होटलमें ? वहाँ आपको क्या आराम मिलेगा !

जानकी— अभी तक तो कोई कष्ट नहीं हुआ ।

फोटोग्राफर—यदि तनिक भी कठिनाई हो तो मेरे यहाँ आ जाइए । मेरे पास एक अच्छा बड़ा सा फ्लैट है जूहूमें । बरामदेमें बैठो तो सामने समुद्रका ऐसा अच्छा दृश्य दिखाई देता है कि घंटों बैठे देखा करो, कभी जी नहीं ऊबता ।

जानकी— [व्यंग्यमय मुसकराहटसे] मालूम होता है यहाँ मकानोंकी तंगी नहीं है । हम तो सुनते थे कि बंबईमें एक कमरा भी मिलना असम्भव है । यहाँ तो मानो सब बड़े-बड़े बंगले खाली पड़े हैं ।

फोटोग्राफर—[बात टालनेके लिए] फोटो तो खिच चुके ।

जानकी— धन्यवाद ।

फोटोग्राफर—[चपरासीको बुलाकर] ये सब चीज़ें उठा ले जाओ ।

जानकी— [तनिक उत्सुकतासे] आपने कहा शाम तक तैयार हो जायँगे ?

फोटोग्राफर—मैं अभी डार्करूममें जाकर इन्हें तैयार करता हूँ । बहुत रुचिकर होता है फोटो बनानेका ढंग । आपने देखा कभी ?

जानकी— जी, नहीं ।

फोटोग्राफर—तो चलिए मेरे साथ । अभी सब समझा देता हूँ ।

जानकी— नहीं, इस समय नहीं, फिर कभी सही ।

फोटोग्राफर—जैसी आपकी इच्छा ।

[जाता है । जानकी कमरेमें कुछ क्षणके लिए अकेली रह जाती है । कुरसीसे उठ कर दीवारपर टंगी तसवीरोंको समीपसे देखती है । साथ ही कुछ गुनगुनाने लगती है । एक व्यक्ति कमरेमें आकर चुपकेसे खड़ा हो जाता है और उसका गाना सुनने लगता है । यह साउण्ड इंजीनियर है ।]

साउंड इंजीनियर—[कुछ देर बाद] वाह, वाह ! क्या आवाज दी है भगवान् ने आपको !

जानकी— [आश्चर्यसे पीछे मुड़कर] आप कौन साहब हैं ?

सा० इं०— मैं यहाँ साउण्ड इंजीनियर हूँ फिल्ममें जो बातचीत व गाने होते हैं, उनको रिकार्ड करना मेरा काम है ।

जानकी— हूँ, समझी ! अब आप शायद यह पूछना चाहेंगे कि मैं कहाँ ठहरी हूँ ? वहाँ कोई कष्ट तो नहीं ?

सा० इं०— [विस्मयसे] मैं आपका मतलब नहीं समझा ।

जानकी— किसी खास मतलबसे तो नहीं कहा । यहाँके लोग इतने नेक हैं कि क्या बताऊँ ! सभीने मुझसे यही प्रश्न पूछा । प्रश्न ही नहीं पूछा, अपने घर तक में रहनेके लिए भी निमन्त्रण दिया ।

सा० इं०— मैं आपको जानता तो नहीं, परन्तु इतना अवश्य पहचानता हूँ कि आप फिल्म संसारमें अभी नई नई आई हैं । आप क्या करती हैं या क्या करने आई हैं, उससे तो मेरा कोई वास्ता नहीं । केवल इतना सावधान कर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि यहाँके लोगोंसे बचकर रहना ।

जानकी— धन्यवाद । मैं अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हूँ ।

सा० इं०— जब नई नई आती है तो सभी यही समझती हैं । और फिर आप तो भोलीभाली दिखती हैं । ध्यान रखना कहीं इनकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें न आ जाना ।

जानकी— आपकी नेक सलाहके लिए आभारी हूँ । आशा है ऐसी स्थिति उत्पन्न न होगी ।

सा० इं०— मुझे कुछ और नहीं कहना है सिवा इसके कि कोई आवश्यकता हो तो मुझे अपना मित्र तथा हितैषी समझना; वैसे भी मैं आपको आपके काममें सहायता दूँगा । सिनेमामें आवाज बहुत बड़ी चीज है । देखा जाय तो इसीका तो सारा खेल

है। माइक्रोफोनकी कुंजी अपने हाथमें है। चाहूँ तो आप की आवाज़में बुलबुलकी सी मिठास भर दूँ, और चाहूँ तो आवाज़को ऐसा कर दूँ कि मालूम हो जैसे कोई मेंढक टर्रा रहा हो।

[रूपेन्द्रस्वरूप वापस आता है। साउंड इंजीनियरकी ओर घूम कर देखता है मानो उसने उसकी बातचीतका अन्तिम भाग सुन लिया हो।]

रूपेन्द्र— [साउंड इंजीनियर से] आपने इनकी आवाज़ रिकार्ड करके देखी ?

सा० इं०— जी, अभी करने जा रहा था।

[फोटोग्राफर एक हाथमें गीले नैगेटिव पकड़े अन्दर आता है]

फोटोग्राफर—वाह! वाह! क्या तसवीरें उतरी हैं! देखिए, डायरेक्टर साहब।

रूपेन्द्र— अभी देखता हूँ।

[पबलिसिटी डायरेक्टर दो चार कागज़ोंको झटकाता हुआ आता है।]

प० डा०— देखिए, मिस अंजना, कैसी बढ़िया चीज़ लिखी है। पढ़ने वाले फड़क न उठें तो कहना।

रूपेन्द्र— श्रीमती जानकी...

प० डा०— [बात काटकर] जानकी नहीं, अंजना कहिए।

रूपेन्द्र— अच्छा नाम है। परन्तु नाम कुछ भी हो, अच्छा ही होता है। हाँ, तो आइए, मिस अंजना, आपसे दो चार बातें बिजनेसकी कर लें। देखिए मैं आपको पहले फिल्मके लिए बीस हज़ार देनेको तैयार हूँ। इतनी बड़ी रक़म शुरूमें शायद ही किसी और अभिनेत्रीको मिली हो। कमसे कम मैंने तो अब तक किसीको नहीं दी—चाहें तो नियमपत्र पर हस्ताक्षर कर दें।

प० डा०— हाँ, मिस अंजना, डायरेक्टर साहब जो कह रहे हैं, वह सच है। ऐसा अवसर बहुत खुशक़िस्मत लोगोंको मिलता है।

जानकी— बहुत कुछ धन्यवाद ! आप लोग कितने नेक हैं ! बंबई शहर भी बहुत अच्छा है । रहनेके लिए जगह भी बहुत है । आप ही लोगोंकी कृपासे मैंने इन पिछले आध पौन घंटेमें बहुत कुछ सीख लिया है । सोचती हूँ मैं अपने छोटेसे नगर ही में अधिक सुखी रहूँगी । नमस्कार ! [उठकर दरवाजे की ओर बढ़ती है ।]

रूपेन्द्र— सुनिए तो, एक मिनिट ठहरिए । कुछ मालूम भी तो हो, मिस अंजना...

जानकी— [दरवाजे पर क्षण भर रुक कर] मिस अंजना नहीं, श्रीमती जानकी कहो । नमस्कार !

[जाती है । सब लोग एक दूसरेकी ओर हक्के-बक्के देखते रह जाते हैं।]

रूपेन्द्र— दिमाग़ खराब है इसका । ऐसा अच्छा अवसर खो दिया ! और कभी कोई इतना करनेको तैयार न होगा । अब तो आकर मेरे दरवाजे पर नाक भी रगड़े तो अन्दर पाँव न रखने दूँ ।

[कहानी लेखक आता है—बहुत उत्तेजित]

कहानी लेखक—एक कहानी लिखकर लाया हूँ—मिस अंजनाके लिए । [चारों ओर देख कर] कहाँ गई वह ?

रूपेन्द्र— बस तुम पाँच मिनिट लेट पहुँचे; चिड़िया उड़ गई हाथसे ।

प० डा०— जो बेचते थे दवाए दर्दे दिल, वह दुकान अपनी बढ़ा गये ! क्यों, साहब, कैसी कही ! [रूपेन्द्रकी ओर हाथ बढ़ा कर] लाइए हाथ !

[सब एक दूसरेकी ओर खिलखिला कर हँसते हैं । हाथ मिलाते हैं । परदा गिरता है ।]

●

महिला-मण्डल

•

महिला-मण्डल

[दैनिक "समाचार" के सम्पादकीय आफिसका एक छोटा सा कमरा—मेजें पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा अन्य प्रकारके अखबारोंसे लदी हैं : रद्दीकी टोकरियाँ भरी पड़ी हैं। दीवारों पर सुन्दर स्त्रियोंके चित्र टँगे हैं जिनमें वे भिन्न-भिन्न प्रकारकी क्रीमों, पाउडर तथा लिपस्टिकोंका प्रयोग करती हुई दिखाई गई हैं। खिड़कीमेंसे बाहर देखने पर दूर तक ऊँची-ऊँची इमारतें दृष्टिगोचर होती हैं।

इस समय कमरा प्रायः खाली है—केवल एक पचास वर्षका व्यक्ति बीचवाली मेज पर बैठा बड़ी तेजीसे टाइपराइटर चला रहा है—उसके दाँयी ओर टेलीफोन रखी है। सम्पादक साहब, आधुनिक ढंगके दुबले-पतले शोख तबीयतके पत्रकार, प्रवेश करते हैं]

सम्पादक— सब ठीकठाक चल रहा है, मदनगोपाल ?

मदनगोपाल—ओह ! आप—नमस्कार ! जी हाँ, चल ही रहा है—चार बजे तक यह पृष्ठ तैयार हो जाना चाहिए...

सम्पादक— चार बजे ! कुछ ज़्यादा ही देर हो जायगी। प्रेस वाले हर हफ़्ते चिल्लाते हैं—मुझे मैनेजर साहब अभी-अभी कह कर गये हैं कि यदि चार बजेसे पाँच मिनट भी इधर-उधर हुए तो वे रविवारको साप्ताहिक नहीं निकाल सकेंगे।

मदनगोपाल—अपनी ओरसे तो भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ—किन्तु साहब बड़ी मुसीबतका काम है यह—

सम्पादक— [खाली कुर्सियों की ओर संकेत करके] और यह लड़के कहाँ हैं ?

मदनगोपाल—सातवलेकर तो कल रात बहुत देर तक काम करता रहा—इसलिए आनेमें कुछ देर हो गई होगी। प्रकाश अभिनेत्री 'सुन्दर लता' से भेंट करने गये हैं।

सम्पादक— [नाक चढ़ाकर] उँह ! सुन्दरलता !!

मदनगोपाल—हमने अपने पाठकोंको हर रविवारके दिन एक अभिनेत्रीके बारेमे बातचीत करनेका वचन दे रखा है। जो अधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध है उनसे भेंट कर चुके है।

सम्पादक— अच्छा—जैसे जी में आये करो, परन्तु उसकी फ़ोटो मत छापना।

मदनगोपाल—हमारे पास उसकी पन्द्रह साल पहलेकी एक फ़ोटो रखी है—वह ऐसी बुरी नही—और उसने उस पर हस्ताक्षर भी कर रखे हैं...

सम्पादक— हस्ताक्षर ! तुम्हारा मतलब उसके अंगूठेकी छापसे है ?

मदनगोपाल—नही जी—बराबर हस्ताक्षर हैं और साथमें यह भी लिखा है "मेरे सहस्रो फ़िल्मी मित्रोके नाम जिन्हें मुझसे अनुराग है—"

सम्पादक— इस सप्ताहका लेख क्या है ?

मदनगोपाल—[घृणित भावसे] "गर्भवती स्त्रीके लिए उपयोगी वस्त्र।" देखिए, सम्पादक साहब आपके "महिलामण्डल" की "लीला दीदी" बने मुझे आज तीन साल हो गये हैं—अब मुझे कोई और काम दीजिए जो पुरुषोंके योग्य हो—इससे तो थक गया हूँ—अजीब अजीब पत्र आते है—कोमल करुणार्द्र—यह सुनिए ! 'प्रिय दीदी, तुम्हारा लेख "सुखी कुटुम्ब" बहुत ही अच्छा लगा। अब मैने फ़ैसला कर लिया है कि एक बच्चा होना ही चाहिए; किन्तु मेरे स्वामी 'नेवी' में काम करते है...अह !'

सम्पादक— थोड़ी देर और हिम्मत बाँध कर चलाये चलो...मैं किसी योग्य स्त्रीकी खोजमें हूँ जिसको आपका काम सौप सकूँ—देखो अगले महीने तक तो मिल ही जानी चाहिए...

मदनगोपाल——हाँ, यह भार उसे सौंप देनेमें मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी——आप चाहें तो मुझे बच्चोंका "श्याम चाचा" बना दें परन्तु "महिला-मण्डल" की "सर्वप्रिय दीदी" के बन्धनसे मुक्त करें।

सम्पादक—— ओह ! याद आ गया——देखो जी "रेशम फ़ेस पाउडर"का नाम कहीं न कहीं जरूर लिखना——अभी कुछ ही दिन हुए उन्होंने कई डब्बे नमूनेकी तौर पर भेजे थे——और विज्ञापन भी देते ही रहते हैं——इसलिए ज़रा खुश ही रखना चाहिए उन्हें...

मदनगोपाल——कह दूँगा कि मैंने स्वयं प्रयोग किया है और इतना उत्तम पाया कि लोग अब मुझे पहचान तक नहीं सकते !!

सम्पादक—— [हँसते हुए] अच्छा आपके काममें और बाधा नहीं डालूँगा——भगवान् तुम्हारा भला करे——और देखो, जैसे भी बन पड़ तीन बजे तक तैयार कर दो।

मदनगोपाल——जी अच्छा।

[सम्पादकके जाते ही फिर टाइप करने लगता है——टेलीफोन बजता है]

मदनगोपाल——[सिगरेट सुलगाकर टेलीफोन उठाता है] जी हाँ...यह दैनिक "समाचार"का ही दफ़्तर है——ओह ! आप 'लीला दीदी' से बात करना चाहती हैं...क्षमा कीजिए, इस समय तो वह बाहिर गई हुई हैं...कह नहीं सकता...सम्भव है "ड्राई क्लीनर" (Dry cleaner) के पास गई हों... आप कुछ संदेशा देना चाहती हैं क्या ?...जी हाँ...मैं लिख लेता हूँ [संदेशा दुहराता तथा लिखता है]...श्रीमती जल भातुंगवालाने टेलीफ़ोन करके पूछा है कि उनका नाम उन लोगोंकी सूचीमें क्यों नहीं प्रकाशित किया गया, जो बाटलीवालाकी पिछले बुधको जुहू पर चाँदनी रातकी पार्टी

मे उपस्थित थे...जी हां—मैंने लिख लिया...मुझे विश्वास है कि दीदीको इस भूलके लिए स्वयं बहुत खेद होगा...हां, कुछ गलती ही हुई...जी, अवश्य आते ही कह दूंगा... नमस्कार...

[टेलीफोन रखता है...प्रकाश आता है]

प्रकाश— [परेशानीसे कुर्सीमें गिरते हुए] हूं—कैसा जीवन...कैसी स्त्री !

मदनगोपाल—क्यों, क्या हुआ ?

प्रकाश— 'महिलामण्डल'के लिए रूपरंगकी रानी 'सुन्दरलता' से पृथक् भेंट करके आ रहा हूं।

मदनगोपाल—जब तुम पहुंचे तो क्या कर रही थी ?

प्रकाश— बाल रंग रही थी...अपनी वर्षगांठके शुभागमनमें।

मदनगोपाल—यह काम ही ऐसा है...इसमें यह सब कुछ करना ही पड़ता है...अच्छा तुम जल्दीसे लेख लिखकर दो मुझे...तीन बजेसे पहले देना है !

प्रकाश— अभी तो बहुत समय है।

मदनगोपाल—सम्पादक महाशय और मैनेजर तो कबसे चिल्ला रहे हैं !

प्रकाश— [अपने टाइपराइटरमें काग़ज़ डालते हुए] मैंने उससे कहा कि हमारे पाठकोंको उसके विवाह-सम्बन्धी विचारोंको जाननेकी बहुत उत्सुकता है—कहने लगी मुझे शादीसे कोई विरोध नहीं—लड़कियोंको शादी करनी ही चाहिए—जब मैं जवान थी तो मै भी काफी शादी किया करती थी—अब अपना सारा समय अपनी कलाको अर्पित करती हूं।

मदनगोपाल—और अपनी नातीको—

प्रकाश— मैंने उसके "नशाबन्दी", "हिन्दुस्तानी क्रिकेट टीम", "रेलवे बजट" तथा "राशनकी क़ीमतें बढ़ाने"के बारेमें विचारोंका भी पता लगाया है—

मदनगोपाल—[उसके लम्बे लेक्चरको काटकर] अरे, दोस्त, तुम तो शादी-शुदा आदमी हो—जरा बताना तो—गर्भवती स्त्रीके लिए कितने दस्ताने चाहिए ?

प्रकाश— कौन है गर्भवती ?

मदनगोपाल—कोई भी हो—"गर्भवती स्त्रीके लिए उपयोगी कपड़े" मेरे लेखका शीर्षक है—

प्रकाश— किन्तु दस्ताने क्यों ?

मदनगोपाल—चुन्ने मुन्नेको उठानेके लिए...

प्रकाश— बकवास बन्द करो—उनसे केवल यही कहो कि खूब खाओ और खूब काम करो—फ़र्श साफ़ करो, चक्की पीसो, कपड़े धोओ और नखरे कम करो—

मदनगोपाल—कैसी भोली बातें करते हो—'लीला दीदी' अपने पाठकोंको कभी इस तरह निराश कर सकती है...इस प्रकार साफ़-साफ़ लिखने लगूँ तो यह पत्रिका ही बन्द हो जाय...[पास रखी पत्रिकाओंको थपककर] मैं समझता हूँ अब इन पत्रिकाओंको ही देखना पड़ेगा...तभी कुछ नये विचार आयेंगे...और देखो जी...यदि एक योग्य पत्रकार बनना है तो तुमको बहुत कुछ सीखना पड़ेगा। स्त्रियोंकी वर्तमान समस्याओंको समझना पड़ेगा !

प्रकाश— मैं तो राजनीतिक विषयों पर विशेषता प्राप्त करना चाहता हूँ ताकि इन 'लीडरों' से टक्कर ले सकूँ...

मदनगोपाल—यह व्यर्थकी बातें बन्द करो और मुझे काम करने दो।

[दोनों कुछ देर तक काम करते हैं—सातवलेकर आता है]

सातवलेकर—नमस्कार, बहिनो और भाइयो ! इस सप्ताह स्त्री-संसारमें क्या विप्लव आया है...

मदनगोपाल—सम्पादक साहब चक्कर लगा गये हैं और कह गये हैं कि 'महिलामण्डल'का पृष्ठ तीन बजे तक उनके पास पहुँच जाना

चाहिए—समय बहुत कम है—तुम कृपा करके बैठो और काम करो—पाठकोंके प्रश्नोंके उत्तर लिखकर मेरे हवाले करो ।

सातवलेकर—मेरा काम तैयार है...केवल टाइप करना रहता है । सच, यहाँ एक पढ़ी, लिखी, चतुर, सुन्दर, युवतीका होना आवश्यक है जो हम लोगोंके साथ काम करे । कई प्रश्न ऐसे आत्मीय होते हैं कि उत्तर देनेमें संकोच होता है...यह देखो [दोनोंको एक सवाल दिखाता है, दोनों खिलखिला कर हँसते हैं]... सच दिमाग थक जाता है, दिनों दिन बच्चोंकी लंगोटियाँ, गोरा रंग करनेकी क्रीमों, लिपस्टिकों तथा दुबले होनेके साधनों के विषयमें लिखते-लिखते...क्यों, क्या कहते हो तुम ?

मदनगोपाल—एक उल्टा दो सीधे, एक आगे धागा करके सीधा जोड़ा—दो पीछे सिलाई करके नीचे उतारो...

[सब हँसते हैं]

सातवलेकर—जरा सोचो—अपने जीवनके तीन अमूल्य वर्ष मैंने अमरीका में 'जर्नलिज्म' सीखनेमें व्यय किये...मैं पूछता हूँ क्या इसीलिए ? [प्रश्नका उत्तर नहीं मिलता—टाइपराइटर तेजीसे चलते हैं—टेलीफोनकी घण्टी होती है ।]

मदनगोपाल—हैलो...हम सब काममें व्यस्त हैं...समय पर समाप्त हो जायगा...आप चिन्ता न कीजिए ।

[टेलीफोन रख देता है]

प्रकाश— सम्पादक महाशय ?

मदनगोपाल—हाँ,

सातवलेकर—[एक पत्र उठा कर]...यह सुनो, यह एक नये क़िस्मका धब्बा आया है—यह महिला पूछती है कि 'बीयर'के धब्बे मेजपोश पर से कैसे निकाले जायँ ?

प्रकाश— धब्बे ! धब्बे !! इस देशमें धब्बे डालनेके सिवाय और कुछ काम है भी इन स्त्रियोंको—

मदनगोपाल—नीबूका रस और नमक कैसा रहेगा ?

सातवलेकर—यह उपाय तो स्याहीके धब्बे मिटानेको बताया था—और पिछले रविवारको ही ।

मदनगोपाल—तो अब सिरका और चीनी लिख दो ।

सातवलेकर—तो सिरकेके दाग़ कौन मिटायगा ?

प्रकाश— ह्विस्की और चीज़ (Cheese) ।

सातवलेकर—मज़ाक नहीं करो...

मदनगोपाल—'हाइड्रोजन पेरोक्साइड' (Hydrogen Peroxide) और 'ग्लैसरीन' (Glycerine) ।

सातवलेकर—यह अच्छा जँचता है—और फिर बहुतसे घरोंमें यह चीजें मौजूद होंगी—मेरा विचार है थोड़ा-सा 'अमोनिया' (Ammonia) भी मिला दूँ...[टाइप करता है]... ग्लैसरीन एक हिस्सा, हाइड्रोजन पेरोक्साइड तीन हिस्से और अमोनिया छः हिस्से—मिलाकर अच्छी तरह रगड़ो जब तक दाग़ न मिट जायँ—[साथियोंसे] क्यों, क्या ख्याल है ?

मदनगोपाल—बहुत अच्छा ।

प्रकाश— कहीं तीनों चीज़ें मिलानेसे आग लगनेकी सम्भावना तो नहीं !

[टेलीफोन फिर बजता है]

मदनगोपाल—प्रकाश...ज़रा सुनना...मैं जरा इस आकांक्षित माँका क़िस्सा समाप्त कर लूँ—

प्रकाश— अच्छा [टेलीफोन उठाता है]...हूँ...लीला दीदी !... ..जी...अवश्य...यहीं हैं...मैं उन्हें फ़ोन देता हूँ [मदनगोपाल जोर-जोरसे हाथ हिलाकर समझाता है कि न कर दो]... ज़रा ठहरिए वह अभी आ रही हैं...

सम्पादक— परन्तु तुमने यह विधि कहाँसे पाई ? क्या तुम्हारी घरवाली की विशेषता है ?

[गुस्सा तेज है]

सातवलेकर— [क्षमा याचनाके भावसे] नहीं, मैंने स्वयं बनाई थी—सोचा, नई चीज है अच्छी, दिलचस्प रहेगी...और फिर आपने देखा होगा कि इसमें राशनकी कोई चीज नहीं, लोगोंको कुछ तो पीड़ा सहनी ही पड़ेगी अपनी मातृ-भूमिके लिए...

सम्पादक— [मुसकराहट रोकने पर भी नहीं रुकती] यदि लोगोंकी बलि ही देना चाहते हो तो सीधी तरहसे कहो...

सातवलेकर— यह पहली बार है कि मेरी बताई गई विधि ग़लत हुई—आपको याद होगा कि "बैंगनकी आईस-क्रीम" कितनी पसन्द आई थी बहनों को...

सम्पादक— प्रेसकी स्वतन्त्रताका यह मतलब तो नहीं कि जो जी में आया छाप दिया—ध्यान रखो ऐसी शिकायत फिर न आये...

[जाता है]

सातवलेकर— [माथा ठोंक कर] यह फल मिलता है परिश्रम और मौलिकताके लिए...[कोई उत्तर नहीं देता—टाइपराइटर निरन्तर चलते हैं कुछ देर]

मदनगोपाल— [काग़ज़ टाइपराइटरमेंसे निकालते हुए] शुक्र है भगवान् का—समाप्त तो हुआ...[अपना काग़ज़ निकाल कर] और यह लो "सुन्दरलता" से भेंट !

मदनगोपाल— शाबाश ! तुम्हारा क्या हाल है सातवलेकर ?

सातवलेकर— [स्पीड तेज करते हुए] बस एक आध मिनट और...

[एक चंचल युवती आती है—"महिलामण्डल" के पुरुष उसको देखते हैं फिर एक दूसरेको...कुछ अनुत्साहपूर्वक]

युवती— नमस्कार ! मैं "लीला दीदी" से मिलना चाहती हूँ ।

[सातवलेकर मदनगोपालकी ओर संकेत करता है]

मदनगोपाल—मुझे खेद है कि वह इस समय आफ़िसमें नहीं हैं...

युवती— अच्छा, तो मैं यहीं उनकी प्रतीक्षा करती हूँ...आपको कोई बाधा तो न होगी...

मदनगोपाल—कदापि नहीं...परन्तु 'दीदी' तो जल्दी लौटनेकी नहीं, वे अभी-अभी अस्पताल गई हैं।

युवती— बीमार हैं क्या? [मदनगोपाल सिर हिलाता है]...ओह यह तो बुरी बात हुई—मुझे बहुत बुरा मालूम हो रहा है यह जानकर...क्या कुछ खास बात है?

सातवलेकर—नहीं, कोई घबराहटकी बात नहीं...वह जचगीके लिए गई हैं।

युवती— [खुशीसे] सच! यह तो बड़ी खुशीकी बात है...क्या पहला 'बेबी' है?

प्रकाश— पन्द्रहवाँ!

युवती— [घबरा कर] भगवान्‌के लिए—क्या आप सच कह रहे हैं?

सातवलेकर—घबराइए नहीं—सम्भव है चौदहवाँ ही हो—ठीक नहीं कह सकता...[युवतीके पाँव शिथिल पड़ जाते हैं और लड़खड़ाने-सी लगती है—सातवलेकर उठकर उसे सहारा देकर गिरनेसे बचाता है...]

[सम्पादक आता है]

सम्पादक— यह क्या हो रहा है? क्या यह भी अखरोटोंके लड्डूका फल है? मैनेजर मेरी जान खा रहा है और तुम यहाँ 'भारत नाट्यम्' कर रहे हो...

युवती— पानी...पानी...

मदनगोपाल—[कुछ कागज सम्पादकको देकर] यह रहा "महिला-मण्डल"...शामको आकर 'प्रूफ' देख लूँगा।

सम्पादक— हाँ—ठीक...किन्तु इसका क्या होगा?

मदनगोपाल—यह 'दीदी'से मिलने आई थीं...

मदनगोपाल—यह 'दीदी'से मिलने आई थीं...आप चिन्ता न कीजिए... हम इनकी देखभाल कर लेंगे...[सम्पादक जाता है] सातवलेकर, अब बताओ किसी युवतीको यूँ गश आ जाय तो उसे होशमें लानेका क्या उपाय है?

सातवलेकर—नहीं जानता...डाक्टर बुलवाओ...

मदनगोपाल—कोई शब्द-कोश, कोई होमोपैथी, कोई स्वास्थ्य-रक्षाकी किताब देखो न! और कुछ नहीं तो "स्त्रीका गृहस्थ-संसार" ही देखो...

[प्रकाश किताब उठा कर पन्ने जल्दी-जल्दीसे पलटता है जब पर्दा गिरता है]

कलाकार और नारी

कलाकार और नारी

[परदा उठने पर मीनाक्षी और साधना दोनों बैठी बातें करती दिखाई देती हैं। घर अच्छा बड़ा और सुसज्जित है। एक दो प्राकृतिक दृश्योंके चित्र, एक दो सुन्दर तथा कलापूर्ण ढंगसे उतारे हुए फोटो, रेडियोग्राम, पेपरमाशीका टेबिल लैम्प, तिब्बती फूलदान।]

मीनाक्षी— नई खबर सुनी ?

साधना— कौन-सी ?

मीनाक्षी— सुना है राधा और मनोहरमें फिर झगड़ा हुआ। कुछ लोगों का विचार है कि अब वे अलग हो जायेंगे। उनका वैवाहिक जीवन तो समाप्त ही समझो।

साधना— यह तो होना ही था।

मीनाक्षी— इसे तुम अनिवार्य क्यों समझती हो ?

साधना— मीना, ज़रा सोचो, उन दोनोंमें अन्तर कितना है! उमरमें देखो तो भी और रूपरंग देखो तो भी। माना कि मनोहर के पास पैसा है, पर उससे क्या ? उसका सारा दृष्टिकोण इतना संकीर्ण है कि राधा जैसी उदार विचारोंवाली लड़कीके लिए निभाना बहुत कठिन है। कहते हैं बेचारीने कोशिश तो बहुत की परन्तु सफल नहीं हुई। वह तो बात-बातमें संदेह करने लगता है।

मीनाक्षी— जब तक पति-पत्नीके विचारोंमें समानता न हो जीवन दूभर हो जाता है।

साधना— पुरुष होते बड़े शक्की हैं। पत्नी ज़रा किसीकी ओर देखकर मुसकराई नहीं कि उनकी छाती पर साँप लोटने लगता है।

मीनाक्षी— बिलकुल ठीक कहती हो। पुरुषोंका सारा रोमांस और प्रेम शादी हो जाने पर न जाने कहाँ लोप हो जाता है। फिर तो दफ़्तर या रोटी कमानेका धंधा...[टेलीफोनकी घंटी बजती है। उठाते हुए] ग़लत नंबर होगा...हैलो! हाँ, बात कर रही हूँ...प्रदर्शनी...कौन सी...समझी...मुझसे मिलना चाहते हैं? ...क्या काम है?...हाँ, यदि जरूरी है तो आइए...मैं घर ही पर हूँ...हाँ...चले आइए अभी। [टेलीफोन रखती है।]

साधना— किसे बुलावा दे रही हो?

मीनाक्षी— [हँसते हुए] मुझे स्वयं ही नहीं मालूम।

साधना— बनो मत।

मीनाक्षी— नहीं, सच कहती हूँ। कल राकेश और मैं शामको घूमने निकले तो पार्क स्ट्रीटमें जो चित्रकला प्रदर्शनी हो रही है, वहाँ जा पहुँचे। वहींका कोई चित्रकार है जो मुझसे मिलना चाहता है।

साधना— तो मैं चलूँ, अपनी शौपिंग कर आऊँ। जिस कामसे निकली थी वह तो रह ही गया। ऐसे ही गप्पें लगाने लगी तुमसे। [उठती है]—एक बात कहूँ? ये कलाकार लोग बहुत रसिक होते हैं। [मुसकरा कर] ज़रा सचेत रहना।

मीनाक्षी— तुम चिन्ता न करो। मैं इतनी आसानीसे किसीकी बातोंमें आनेवाली नहीं। तुम न्यू मार्केट जा रही हो तो ज़रा सा मेरा भी काम करती आना। मैंने दो साड़ियाँ ड्राईक्लीन करनेको दी थीं। उन्हें ज़रा लेती आना। आज शामको चाहिए।

साधना— लाओ रसीद।

मीनाक्षी— लो, देती हूँ।

[मेजके खानेमें से रसीद निकाल कर देती है। साधना कागज़के टुकड़ेको बटुएमें डालकर चलती है। मीनाक्षी उसे दरवाजे तक पहुँचाती है। फिर अपनी साड़ीको सामनेसे ठीक तरह सजा कर कंधे पर सँवार लेती हैं। हैंडबेगमेंसे काम्पॅक्ट निकाल कर अपनी नाक पर पाउडर लगाती है, लिपस्टिकको ठीक करती है।

इतनेमें दरवाजे पर खटका होता है और आगन्तुक उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही अन्दर चला आता है। उसके बाल लम्बे-लम्बे हैं और कपड़ोंमें, चालढालमें तथा मुसकराहटमें एक बेपरवाही सी है, जो भली मालूम देती है। हाथमें सिगरेट तथा बगलमें एक बस्ता है।]

मीनाक्षी— आइए, बैठिए। आप हीने टेलीफ़ोन किया था ?

चित्रकार— जी। [बैठता है। फिर सिगरेटका एक लम्बा कश लगाकर उसे पास ही ज़मीन पर फेंक देता है और पैरोंसे मसल देता है] कल आप हमारी प्रदर्शनीमें आई थीं। इस असीम कृपाके लिए मैं स्वयं आपको धन्यवाद देने आया हूँ। जिस रुचिसे आप तसवीरें देख रही थीं उससे प्रत्यक्ष है कि आपको कलासे प्रेम है, आप कलापारखी हैं...

मीनाक्षी— [बात काट कर] मुझे तो चित्रकलाका क ख ग भी नहीं आता।

चित्रकार— जिस तन्मयतासे आप मेरा बनाया हुआ प्राकृतिक दृश्य देख रही थीं, वह क्या भूलनेकी बात है ? संतरई रंगकी साड़ी, हरे रंगका पतला फूलदार किनारा, उसीसे मैच करती हुई चोली, पैरोंमें भी वैसे ही रंगकी चप्पल, घने काले बालोंमें बेलेके फूलोंकी वेनी बाँधे मानो आप उस प्राकृतिक दृश्यके अधूरेपनको संपूर्ण कर रही थीं।

मीनाक्षी— [कुछ विस्मयसे] सच ? आपको तो मेरी साड़ीका रंग तक याद है !

चित्रकार— इसमें अचम्भेकी तो कोई बात नहीं। जितनी स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित थीं, उन सबमेंसे आप हीकी छवि अनुपम थी।

मीनाक्षी— [अविश्वाससे] आप मुझे बनानेकी चेष्टा तो नहीं कर रहे हैं?

चित्रकार— नहीं, कदापि नहीं, मैं एक कलाकार हूँ, और कलाकारका मन व आँखें सदा सौन्दर्यको ढूँढ़ते रहते हैं। वही उसकी प्रेरणा है, उसीसे उसे उत्साह मिलता है। आपके गलेमें छोटे-छोटे मोतियोंकी नाजुक-सी माला कैसी शोभा दे रही थी! यह क्या शब्दोंमें बखान करनेकी बात है? मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अपना चित्र बनानेकी अनुमति दें।

मीनाक्षी— [हँसती है] आप तो ऐसे बातें करते हैं मानो आपको कोई मोना लिजा मिल गई हो। आश्चर्य तो यह है कि आप गले की माला व पैरोंके जूतों जैसी छोटी-छोटी चीजों पर भी ध्यान देते हैं। मेरा तो विचार था कि पुरुषोंको इन बातोंमें रुचि ही नहीं होती—कमसे कम उन पुरुषोंको जिन्हें मैं जानती हूँ। मेरे पति तो...

चित्रकार— अरे, इन पतियोंका ज़िक्र न कीजिए। मुझे तो इस क़ौमसे चिढ़ है।

मीनाक्षी— आप शायद अविवाहित हैं। घरमें पत्नी आने दीजिए, आपके विचार बदल जायेंगे।

चित्रकार— विवाह? भगवान् बचाये। यह पति-पत्नीका झंझट...

मीनाक्षी— मेरे विचारमें तो आप बहुत नेक पति बनेंगे।

चित्रकार— नेक पतियोंसे तो मैं कोसों दूर भागता हूँ। मेरे दिलमें तो केवल उन्हीं पतियोंके लिए श्रद्धा है जो मज़ेमें पीते हैं, खाते हैं, घर पहुँचकर पत्नीको पीट भी लेते हैं, और फिर उसे बड़े प्रेमसे मनाते हैं, छोटी-बड़ी चीजें भेंट करते हैं, अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगते हैं। इससे घरमें कुछ चहलपहल रहती

है, वरना आम घरोंमें तो पति-पत्नी यों रहते हैं जैसे कोई मुनीबतका मारे क़ैदकी सजा भुगत रहे हों ।

[मीनाक्षीको कुछ गुदगुदी-सी होने लगती है ।]

चित्रकार— क्षमा कीजिए, मैं बहुत निस्संकोच होकर बातें कर रहा हूँ । किन्तु आप तो स्वयं कलाकार हैं । कलाकारके हृदयकी धड़कनको समझती हैं । हाँ, कुछ सिगरेट होंगे आपके पास ?

मीनाक्षी— मेरे पति तो पीते नहीं, परन्तु मेहमानोंके लिए हैं । [उठकर सिगरेट लेने जाती है ।]

चित्रकार— तब तो काफ़ी पुराने और बासी होंगे । अच्छा, लाइए तो ।

[मीनाक्षी टिन लाकर उसके पास रख देती है; चित्रकार एक सिगरेट निकाल कर सुलगाता है और दीयासलाईकी तीलीको फूँक कर लापरवाहीसे मेज पर फेंक देता है । मीनाक्षी उसके हावभाव देख मुसकराती है ।]

चित्रकार— बहुधा लोग कहते हैं कि कलाकार पागल होते हैं । उलटी-सीधी बातें करते हैं, हवाई क़िले बनाते हैं । परन्तु मैं उनमेंसे नहीं हूँ । इसीलिए मैं आपसे साफ़-साफ़ बात करना चाहता हूँ ।

मीनाक्षी— कहिए ।

चित्रकार— मैं आपके रूप और सौन्दर्यसे इतना प्रभावित हुआ हूँ कि जब तक मैं आपका चित्र न बना लूँगा मुझे चैन नहीं मिलेगा । इस छविको मैं कैनवस पर उतार कर अमर बना देना चाहता हूँ । ऐसा चित्र बनेगा कि दुनिया याद करेगी । इसीलिए मैंने आज यहाँ आनेका साहस किया है ।

मीनाक्षी— [हैरानीसे] आप मेरा चित्र बनाना चाहते हैं ?

चित्रकार— हाँ, आपका । वही मेरा सबसे उत्तम चित्र होगा । क्या आपको अभी तक किसीने यह नहीं बताया कि आपमें कितना आकर्षण है !

मीनाक्षी— [विनीत भावसे] आपको मुझसे अधिक सुन्दर कई और युवतियाँ मिलीं होंगी। उनका चित्र बनाइए।

चित्रकार— आप नहीं जानतीं, जब किसी कलाकारको मनचाही प्रतिमा मिल जाती है तो उस पर क्या बीतती है! वह उसे छोड़ नहीं सकता, उसके लिए भटकता फिरता है।

मीनाक्षी— चित्रकारोंके मौडल तो कम उमरकी तरुणावस्थाकी लड़कियाँ होती हैं, न कि मेरी जैसी अधेड़।

चित्रकार— अधेड़? आप अपने आपको अधेड़ कहती हैं? मैं कहता हूँ कि जो मधुरता, जो आकर्षण बाईस तेईस वर्षकी युवतीमें होता है वह किसी तरुणीमें नहीं हो सकता। कवि लोग भले ही उसकी यशगाथा गाते रहें—तरुणियोंमें न तो वह चतुराई होती है, न वह जाग्रति जो एक बाईस-तेईस वर्षकी युवतीमें। पचीस वर्षसे ऊपर भी वह सौन्दर्य नहीं रहता। वे कुछ ज़्यादा ही बुद्धिमान तथा कठोर हो जाती हैं। आप ही की उमर सर्वसंपूर्ण है, अन्यून है। बताइए, आप मेरे स्टूडियोमें कब आ सकेंगी?

मीनाक्षी— मैं वादा नहीं कर सकती। पहले तो मुझे अपने पतिसे पूछना होगा कि आप मेरा चित्र बना भी सकते हैं या नहीं। यदि वह मान भी जायँ तो भी मेरा स्टूडियो जाना तो असम्भव है। आप हीको यहाँ आना पड़ेगा।

चित्रकार— यहाँ चित्र कैसे बन सकता है? कोई फोटो तो नहीं उतारना जो पाँच मिनिटमें काम हो जायगा। घरमें कई प्रकारकी बाधाएँ होंगी, आपके मिलनेमिलानेवाले आते रहेंगे। सम्भव है आपकी सास ही आ टपकें और मुझे बैठा देख आपसे घूँघट निकालनेको कहें। [मुसकराता है।]

मीनाक्षी— [टालते हुए] आप फिर किसी समय आयें तो इस विषय पर ब्योरेवार बातचीत करेंगे।

चित्रकार— किन्तु आप अपना चित्र तो बनाने देंगी न ?

मीनाक्षी— कोई ऐसी आपत्ति तो नहीं होनी चाहिए ।

चित्रकार— [उल्लसित] बहुत कृपा है आपकी । अब मैं चलूँ, जाकर बढ़ियासे बढ़िया रंग और कैनवस खरीदूँ । आज ही ले लूँगा—अभी । कल रविवार है । परसों तक कौन प्रतीक्षा करेगा ! [जेबमें हाथ डालता है] अरे, मेरा बटुआ कहाँ है ? ट्राममें तो नहीं निकाल लिया किसी ने ? क्या आप कुछ रुपये दे सकेंगी ? कितना बुरा मालूम होता है इस तरह माँगना । न मालूम आप क्या समझेंगी । मैं बहुत शरमिन्दा हूँ ।

मीनाक्षी— कितने रुपये चाहिए आपको ?

चित्रकार— यही कोई तीस पैंतीस ।

मीनाक्षी— [हैंडबैग खोलकर उसमेंसे निकालते हुए] इतने तो इस समय नहीं है मेरे पास । यह ले लीजिए । [दस दसके दो नोट देती है ।]

चित्रकार— यही बहुत है काम शुरू करनेके लिए । अच्छा, तो फिर आप से शीघ्र ही भेंट होगी । [जाता है]

[चित्रकारसे अपने रूपरंगकी प्रशंसा सुन मीनाक्षी पुलकित भावसे हैंडबैग खोलती है, और शीशा निकाल कर बाल सँवारती है, सामने रखे फूलदानमेंसे एक गुलाबका फूल तोड़ कर बालोंमें लगाती है । इतनेमें राकेश आता है ।]

राकेश— [फाइलें मेज पर रख कर, कोट उतार कुरसीके पीछे टाँगता है] हैलो !

मीनाक्षी— जानते हो आज क्या हुआ ?

राकेश— [उत्सुक होकर] क्या ?

मीनाक्षी— अच्छा, वह पीछे बताऊँगी, पहले तुम यह बताओ कि तुम्हें आज नई चीज क्या दिखाई दे रही है ?

राकेश— हूँ...हूँ...तुम्हारी साड़ी नई है।

मीनाक्षी— नहीं, यह तो छः साल पुरानी है।

राकेश— और तो मुझे विशेष कोई चीज़ नहीं दिखाई दी।

मीनाक्षी— [निराश सी, बालोंमें लगे हुए फूलकी ओर संकेत कर] यह देखो।

राकेश— क्षमा करना, मैंने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया।

मीनाक्षी— ठीक है, आपको कहाँ फुरसत है मेरी ओर देखने की! आप की तो अपनी ही दुनिया है।

राकेश— नहीं, नहीं, यह बात नहीं। अच्छा, बताओ तुम आज दोपहर को सोई कि नहीं?

मीनाक्षी— राकेश, कल हम चित्रकला प्रदर्शनी देखने गये थे न, वहाँका एक चित्रकार अभी अभी मुझसे मिलने आया था। वह मेरा चित्र बनाना चाहता है।

राकेश— क्या नाम है उसका?

मीनाक्षी— नाम तो मैंने पूछा नहीं। वह इतना उत्सुक था चित्र बनानेको कि क्या कहूँ! उसे मेरी साड़ीका रंग, किनारीका डिजाइन, यहाँ तक कि मेरी चप्पलके दो स्ट्रैप थे या तीन, सब कुछ याद था। और एक आप हैं कि कभी इतना तक नहीं कहा कि वह साड़ी पहन लो, तुम पर अच्छी लगती है। आपको तो यह भी नहीं मालूम कि मेरे पास क्या है क्या नहीं।

राकेश— सम्भव है और लोगोंको इन बातोंमें अधिक दिलचस्पी होती होगी। मैंने भी कभी तुम्हें किसी बातसे रोका नहीं। तुम्हारा जो जी चाहे खरीदो, जो मनमें आये बनाओ, पहनो।

मीनाक्षी— ठीक है। परन्तु यही तो सब कुछ नहीं; पत्नीके प्रति ऐसी उदासीनता...

राकेश— [बात बदलनेकी चेष्टा करते हुए] एक प्याला चाय दे दो। सीधा दफ़्तरसे चला आ रहा हूँ।

मीनाक्षी— बस, मुझसे तो आपका इतना ही संबन्ध है! चाय दे दो... नाश्ता बना दो...खाना तैयार कर दो...बटन लगा दो...

राकेश— तुम तो यों ही नाराज हो रही हो। न मालूम यह चित्रकार क्या क्या कहकर तुम्हें बहका गया है। मुझे तो इन लोगों पर रत्ती भर भी विश्वास नही। झूठे होते हैं, मक्कार—सारेके सारे। तुम्हारी इच्छा हो तो अपना चित्र बनवा लो, परन्तु उसकी बातोंमें मत आना।

मीनाक्षी— फिर वही बात! मैं कहती हूँ आपको हो क्या गया है? किसीसे जरा-सी बात की नहीं कि आपको ईर्ष्या होने लगती है। आखिर मैं भी तो इन्सान हूँ, मेरा भी जी चाहता है मिलनेमिलानेको। किन्तु आप हैं कि बस चाहते हैं सारे दिन घरमें बैठी चक्की पीसा करूँ। घर न हुआ एक क़ैदखाना हो गया। आपकी समझमें क्यों नही आता कि स्त्रियोंके भी दिल होता है, उनकी भी कुछ कलात्मक प्रवृत्तियाँ होती हैं, उनका भी मन चाहता है कि कभी-कभी रोज़-रोजकी दिन-चर्यासे कुछ देरके लिए छुटकारा पायें।

राकेश— [मुसकरा कर] यह चित्रकार तो काफ़ी प्रभावशाली मालूम होता है। इतनी जल्दी असर हो गया!

मीनाक्षी— [व्यंग्यसे] मेरा अपना तो न दिल है न दिमाग़—लोगोंके बहकानेका ही असर है।

राकेश— देखो, मीनाक्षी, मैं इन लोगोंको तुमसे ज्यादा पहचानता हूँ। मुझे दुनियामें काफ़ी धक्के खाने पड़े हैं, तरह-तरहके लोगोंसे टक्कर लेनी पड़ी है, इसलिए तुम्हें सचेत करना चाहता हूँ। यह ठीक है कि कलाकार भावुक होते हैं, प्रकृति और प्रेमके बहुत बढ़िया चित्र बनाते हैं, इन चीजोंको महत्त्व भी अधिक देते हैं। परन्तु वास्तवमें इनके लिए भी रोजी कमानेका प्रश्न उतना ही गंभीर है जितना औरोंके लिए। ये भी उतने ही

स्वार्थी हैं जितने अन्य लोग। इसलिए तुम्हें सावधान करना चाहता हूँ। कुछ रुपये तो नहीं ले गया तुमसे ?

मीनाक्षी— रुपये तो ले गया है, पर उससे क्या !

राकेश— कितने ?

मीनाक्षी— बीस।

राकेश— अब वह जायेगा किसी होटलमें, शराब पियेगा, सिगरेट फूँकेगा और फिर आ जायगा खाली हाथ।

मीनाक्षी— आप तो हरएक पर संदेह करते हैं। किसीको कभी अच्छा भी कहा है आपने ! आपके पैसे हैं। मैंने आपसे पूछे बिना उसे दे दिये, इसीलिए आप ऐसा कह रहे हैं !

राकेश— [अधीरतासे] मुझे बीस रुपयोंकी चिन्ता नहीं। तुम जितना चाहो, जैसे चाहो खर्च कर लो। परन्तु यों कोई झाँसा देकर ले जाय तो बुरा मालूम होता ही है। खैर, जो हो गया सो हो गया। छोड़ो इस बातको। मैं ज़रा मुँह हाथ धो लूँ। [जाता है]

[निराशा, खीझ और गुस्सेमें भरी हुई मीनाक्षी उठ कर जाती है और बालोंमेंसे फूल निकाल कर रद्दी काग़ज़ोंकी टोकरीमें फेंकने लगती है कि साधना हाथोंमें एक बड़ा-सा लिफाफा लिये आती है।]

साधना— [मीनाक्षीको फूल फेंकते देखकर] क्यों, क्या हुआ ?

मीनाक्षी— होना क्या है ! वही चाल पुरानी बेढंगी। किसीसे बात की नहीं कि आगबबूला होने लगते हैं।

साधना— राकेशसे कुछ झपट हो गई क्या ? और उस चित्रकारका क्या हुआ ?

मीनाक्षी— आया था। मेरा चित्र बनाना चाहता है।

साधना— कैसा आदमी है ?

मीनाक्षी— ठीक है।

साधना— कुछ बताओ भी। गुस्सा राकेश पर है, मुझ पर तो नहीं। कैसा था देखनेमें ? क्या कहता था ?

मीनाक्षी— अच्छा आदमी है। खूब दिलचस्प बातें करता है। इतनी प्रशंसा की मेरी कि और कोई होता तो सोचती मुझे बना रहा है। साधना, किसी कलाकारसे यों बातें करनेका आज पहला अवसर था। मुझे तो अच्छा लगा। कुछ लगी-लिपटी नहीं, दुनियाकी परवा नहीं। समाजके जिन बंधनोंमें हम जकड़े हुए हैं, उनसे उसको कोई वास्ता नहीं। उससे मिलकर ऐसा मालूम हुआ जैसे बंद कमरेमें स्वच्छ और ठंडी हवाका झोंका आया हो।

साधना— [भावुकतासे] तुम ठीक कहती हो, मीनाक्षी। मैं जानती हूँ कलाकार कितने विचित्र होते हैं। कवि, चित्रकार, गाने वाले—कितना आनन्द आता है इनकी बातें सुननेमें! किसी भी सभामें पहुँच जायें, रौनक आ जाती है। [गंभीरतासे] मैं भी एक कलाकारको जानती थी बंबईमें। काफ़ी मित्रता भी थी हमारी। संभव है शादी भी हो गई होती।

मीनाक्षी— सच? फिर क्या हुआ? कहाँ है वह आजकल?

साधना— नहीं जानती। [आह भरकर] जाने दो इस क़िस्सेको, दुःख होता है।

[चित्रकार दरवाजा खटखटाता है और अन्दर चला आता है। वह पिये हुए है। नशेमें जरा कुछ झूम-सा रहा है।]

चित्रकार— [साधनाको देखकर] तुम? यहाँ?

साधना— [सहर्ष, दो क़दम आगे बढ़कर] और तुम? तुम कब आये बंबईसे?

चित्रकार— कोई दो तीन महीनेसे यहाँ हूँ।

साधना— क्यों, बंबई छोड़ दिया क्या?

चित्रकार— छोड़ा तो नहीं, परन्तु अब बंबईमें मन नहीं लगता। साधना, तुम्हारे चले आनेके बाद मेरे लिए बम्बईमें क्या रखा था!

साधना— और क्या कर सकती थी मैं ! जब यह मालूम हुआ कि तुम्हारी पत्नी भी है और दो बच्चे भी...

[मीनाक्षी चित्रवत् खड़ी इन दोनोंकी बातें सुनती है ।]

चित्रकार— मैं जानता हूँ । परन्तु यदि मैं और लोगोंकी तरह पत्नी और बच्चोंकी चिन्ता करने लगूँ तो मेरी कलाका क्या हो ? कला ही तो मेरा जीवन है । वही मेरी जिन्दगीका आधार है ।

मीनाक्षी— आप लोग बैठिए न ।

चित्रकार— क्षमा करना, आज इतने दिनोंके बाद साधनासे मिला हूँ कि और सब कुछ भूल ही गया । [बैठता है, किन्तु बातें साधना ही से किये जाता है] अच्छा बताओ, तुम क्या करती रहती हो सारा दिन ?

साधना— यह जानकर तुम क्या करोगे ? तुम अपनी सुनाओ, तुम्हारे सब मित्र कहाँ है ? गिरधर, ओम और रतन ? क्या रतनने सीतासे शादी कर ली ?

चित्रकार— तुम तो जानती हो कि कलाकारको ब्याहशादीमें कोई रुचि नही होती । वह तो प्रेरणा चाहता है, प्रेरणा ! जहाँ उसे वह मिल जाय, वही दीवाना हो जाता है ।

[मीनाक्षीको कुछ उपेक्षाका भान होता है । वह उन दोनोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है ।]

मीनाक्षी— आप रंग और कैनवस खरीद लाये क्या ? चित्र बनाना कब शुरू करेंगे ?

चित्रकार— आप चिन्ता न करें, अपना वचन पूरा करूँगा । आपका चित्र अवश्य बनाऊँगा । जैसे ही फुरसत होगी, रंग और कैनवस ले आऊँगा ।

मीनाक्षी— [जैसे आँखोंसे परदा हट गया हो] जी ?

चित्रकार— [मीनाक्षीकी बातों पर ध्यान न देकर, साधनासे] क्या तुम यहाँ कुछ देर ठहरोगी ?

साधना— नहीं। मैं तो इनकी साड़ियाँ देने आई थी। [लिफाफा आगे बढ़ाकर] यह लो, मीनाक्षी।

चित्रकार— तो चलो कहीं चलकर बैठेंगे। दो चार बातें करेंगे। कितनी खुशी हुई तुमसे यों अकस्मात् मिलकर।

[साधना अर्थपूर्ण दृष्टिसे मीनाक्षीकी ओर देखती है।]

साधना— क्षमा करना, मीनाक्षी। मैं कल फिर आऊँगी।

[साधना और चित्रकार दोनों उठकर दरवाजेकी ओर जाते हैं। चित्रकार साधनाके लिए दरवाजा खोल, उसकी कमरपर हाथ रखकर उसे आगेको बढ़ाता है। राकेश कमरेमें प्रवेश करता है और सारी स्थिति भांप जाता है। चित्रकार और साधना मुड़ कर नमस्कार करते हैं और चले जाते हैं। राकेश मीनाक्षीके पास आकर प्रेमसे उसके कंधे पर हाथ रख देता है और फिर मुसकराते हुए फूलदानमेंसे एक फूल निकालकर मीनाक्षीके बालों में लगाता है।]

मीनाक्षी— [उसका हाथ पकड़ कर] रहने भी दो! आपको तो सदा मजाक ही सूझता है।

[दोनों प्रेमसे एक दूसरेकी ओर देखकर मुसकराते हैं।]

●

प्रीतके गीत

•

प्रीतके गीत

[बम्बईके एक प्रसिद्ध फिल्म-स्टूडियोमें निर्माताका दफ्तर—दीवारों पर सुन्दर अभिनेत्रियोंके चित्र टँगे हैं। कोनेमें पियानो रखा है—सामने एक बढ़िया सोफ़ा है। मेजके बायीं ओर लाल रंगका टेलीफोन रखा है। दाहिनी ओर की दीवारमें एक बहुत बड़ी शीशेकी खिड़की है जिसमेंसे स्टूडियोकी सब कार्रवाई राकेश साहबको अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे दिखाई देती रहती है।

राकेश इन्हीं खिड़कियोंमेंसे स्टूडियोमें उपस्थित नायक-नायिकाओंको देखता है। फिर लाउड स्पीकरका स्विच खोलता है, एक स्त्री और एक पुरुषके वादानुवाद करनेकी आवाज़ आती है। बीच-बीचमें सितार तथा तानपूरेके स्वर ठीक करनेकी आवाज़ भी है। राकेशचन्द्र क्रोधित हो घण्टी बजाता है। चपरासी आता है।]

राकेश— [तीखे स्वरमें] म्यूजिक डायरेक्टरको बुलाओ।

[चपरासी जाता है—डायरेक्टर आता है] माथुर साहब, यह क्या सुबहसे टुन-टुन हो रही है ? इसी तरह वक़्त जाया होता रहा तो सीन कब तैयार होगा ?

माथुर— सब कुछ तैयार है, केवल एक शब्द ज़रा खटकता है—तालमें ठीक नहीं बैठता।

राकेश— कुछ ही लगा दो, क्या फ़र्क पड़ता है।

माथुर— ऐसे कैसे हो सकता है—गीतका सारा समतोल ही बिगड़ जायगा।

राकेश— तो ला – ला – ला. . .ही लगा दो।

माथुर— यदि ला–ला–ला लगानेसे काम चल सकता तो मैं अब तक काहेको अपना सिर खपाता।

राकेश— आप व्यर्थ ही समय नष्ट कर रहे हैं—मैं अभी 'वादिल तेलंगानी' को टेलीफोन करता हूँ। वह आते ही ठीक शब्द जुटा देगा [टेलीफोन उठाता है—माथुरसे] तुम जाओ, दूसरे गीतोंकी रिहर्सल करवाओ।

[माथुर जाता है—राकेश टेलीफोनके नम्बर घुमाता है] उस्ताद साहब हैं?

...मैं राकेशचन्द्र बोल रहा हूँ...कहाँ रहते हैं आप, इधर कई दिन से देखा ही नहीं...आइए न जरा...हाँ, कुछ थोड़ा-सा काम भी है—एक गीतमें एक शब्द कुछ ठिकानेसे नहीं बैठता...मोटर...अवश्य...जिस समय कहिए हाजिर है—किस समय भेजूँ...अच्छा...पहुँच जायगी..अवश्य...।

[टेलीफोन रख देता है—कोई दस सेकण्ड तक स्टूडियोमें पूर्ण शान्ति रहती है। हालाँकि किसी भी फिल्म-स्टूडियोके लिए यह विचित्र घटना है। फिर धमाकेके साथ दरवाजा खुलता है और एक युवती, जिसे निर्माता साहब कुछ ही दिन हुए अपनी नई फिल्मके लिए ढूँढ़ कर लाये हैं, अन्दर आती है और रोना शुरू कर देती है]

राकेश— [उठ कर उसके समीप जाते हुए] क्यों, किरण, क्या हुआ?

किरण— आप मुझे ही गानेको क्यों विवश करते हैं, जब आपके पास अच्छे अच्छे निपुण 'प्ले-बैक" (Play back) गाने वाले हैं।

राकेश— [सहानुभूति तथा उत्साह प्रकट करते हुए] कौन-सा ऐसा गानेवाला है जिसकी आवाज तुम्हारी जैसी सुरीली हो? तुम इतना अच्छा गाती हो, आवाज इतनी मधुर है कि कोयल हो—सिर्फ़ जरा सी कसर है—वह भी ठीक हो जायगी—फिर देखना, तुम सब नायिकाओंसे बढ़कर नम्बर एक न हो जाओ तो मेरा नाम राकेश नहीं।

किरण— [आँसू पोंछकर] परन्तु जिस तरीक़ेसे आपके कपूर साहब सिखाते हैं उस तरह से तो मैं कभी न सीख सकूँगी...तोबा!

जान खा गये एक स्वरके लिए—कहते है तालमें नहीं है। हज़ारों बार गवाया, अब भी लय ठीक नहीं है। नहीं ठीक होती तो मैं क्या करूँ? लिखनेवालेकी भी तो ग़लती हो सकती है।

राकेश— हाँ, हाँ—क्यों नहीं। इस प्रकार व्यर्थ ही सतानेका कोई मतलब नहीं; ठहरिये मैं अभी बुलाता हूँ कपूरको।

[बुलानेसे पहले कपूर स्वयं ही चले आते है]

राकेश— [कपूरको कहनेका कुछ अवसर दिये बिना ही] क्यों जी, क्या शिकायत है आपको इनके गानेसे?

कपूर— अभ्यासकी बहुत आवश्यकता है; स्वर और तालका ज्ञान अभी ठीक नहीं है—और अभ्यासके मामलेमें आप बहुत सुस्त हैं।

किरणलता— सुबह सात बजेसे निरन्तर गाती चली जा रही हूँ, और मालूम नहीं अभ्यास किसे कहते हैं—कोई मशीन तो नहीं हूँ—मेरा तो गला भी खुश्क हो गया है...

कपूर— क़रीब-क़रीब ठीक हो ही गया है अब तो; केवल दूसरी लाइनमें सम नहीं ठीक आ रहा—तीसरीमें सुर तीव्र पर नहीं पहुँचता।

राकेश— गीत किरणकी आवाज़के लिए होना चाहिए, किरण गीतके लिए नहीं। यदि तीसरी लाइन ठीक नहीं बैठती तो सारी लाइन ही निकाल दो।

कपूर— इससे तो गीतका सारा मतलब ही जाता रहेगा।

राकेश— मतलबको कौन पूछता है,—श्रोता तो 'ट्यून' पर जाते हैं—'ट्यून' पर!

कपूर— यदि आपको यही विश्वास है तो फिर आप सब समझते हैं—मेरी क्या ज़रूरत है? गीत लिखने वालोंकी क्या आवश्यकता है?

राकेश— [गुस्सेमें] हाँ, सब जानता हूँ, गीत लिखनेवालोंको भी और सिखानेवालोंको भी—आप लोग समझते ही क्या हैं अपने आपको ? आप जैसे मास्टरको चार-चार आनेमें खरीद सकता हूँ ।

कपूर— परन्तु मेरी भी तो सुनिए ।

राकेश— सुन लिया बहुत. . .अब जाओ और जैसे किरण गाना चाहे वैसे ही सुरमें साज मिला दो—समझे ! [किरणकी ओर देख मुसकराता है—वह उठकर जाती है—उसके पीछे-पीछे कपूर साहब चल देते हैं]

राकेश— [अपने आपसे] कैसी सुन्दर है—हँसती है तो जैसे मोती गिरते हों—एक बार यह पिक्चर बन जाय तो देखो—सब इसीके ऊपर लट्टू हुए फिरेंगे ।

[चपरासी आता है और झुक कर दरबारी ढंगसे फर्शी सलाम करता है]

राकेश— क्यों, क्या है ?

चपरासी— साहब एक कवि आपसे मिलना चाहते हैं ।

राकेश— अच्छा, अच्छा ! कवि महाशयसे कह दो कि इस महीनेके लिए हमारे पास गीतोंकी सामग्री काफ़ी है—चाहें तो अगले महीने आवें ।

[परन्तु कवि महाशय निर्माताओंको कुछ अच्छी तरह जानने-पहचानने वाले मालूम होते हैं; क्योंकि वह आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना ही अन्दर चले जाते हैं]

कवि— [हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए] धृष्टताके लिए क्षमा कीजिए साहब—परन्तु मैंने यह दो चार गीत तो लिखे ही केवल आपके लिए हैं ।

राकेश— लेकिन कंचन साहब, अभी तो हमारे पास बहुत पड़े हैं ।

कंचन— तो मैं आपसे कोई लेनेको तो नहीं कह रहा, मैं तो केवल दिखानेको आया हूँ—आपकी अनुमति चाहता हूँ, क्योंकि

आपही को इन चीजोंकी परख है। और फिर कभी इसे किरणलता गाये तो क्या कहना

राकेश— [प्रशंसासे प्रभावित होकर] कैसे गीत हैं आपके पास ?

कंचन— जैसे आप चाहें—जीवनके गीत, मरणके गीत, प्रीतके गीत, शोकके गीत, मिलनके गीत, वियोगके गीत, अँधेरी रातके गीत, चाँदनीके गीत...

राकेश— कंचन साहब, तो इन्हें दीजिएगा किस भाव ?

कंचन— आपको लेने कितने हैं ?

राकेश— यह तो गीतकी क़ीमत पर निर्भर है ?

कंचन— आपसे झगड़ा थोड़े कर सकता हूँ—चलिए ३,६०० रुपया दीजिए एक दर्जनका।

राकेश— यह तो तीन सौ रुपया एक गीतका हुआ ? कंचन साहब यह तो मुनासिब नहीं।

कंचन— आप तो जानते हैं कितनी मेहनतसे लिखता हूँ और फिर सबसे पहले आपके पास लाता हूँ।

राकेश— मैं तो एक सौ रुपयेसे एक पाई भी बढ़कर नहीं दे सकता एक गीतके लिए। यह भी केवल आपको...वैसे तो हमारे पास गीतोंकी भरमार है।

कंचन— एक सौ रुपया एक गीत—आप मजाक करते हैं राकेश साहब—कदाचित् आपका यह मतलब नहीं।

राकेश— नहीं, सच कहता हूँ, इससे अधिककी गुंजाइश नहीं है।

कंचन— चलिए ३,००० दीजिए और दर्जन पूरी ले लीजिए।

राकेश— कह दिया १,२००।

कंचन— कुछ तो बढ़िए।

राकेश— चलो १,३००—बस, अब एक पैसा ज़्यादा नहीं।

कंचन— तीन हज़ारसे एक पाई कम न लूँगा।

राकेश— [हँसता है] यह अच्छा सौदा रहा—आप मेरे दोको चार समझिए।

कंचन— कवि लोग भूखे मर जायँगे यदि आप ऐसी ही सख्ती बर्तते रहे तो।

राकेश— भूखे! भूखे कहाँ? आज-कल तो गीतोंका बिजनेस बहुत अच्छा है। जिसको देखो बम्बई चला आ रहा है।

कंचन— बेचने ही तो आये हैं, चलिए तीन हजार दीजिए...आप तो हमारे अन्नदाता हैं। हमारी कहाँ गुज़र हो सकती है आपके बिना।

राकेश— [चापलूसीसे कुछ फिसलकर] अच्छा चलिए—आप ही खुश रहिए...१,५०० देता हूँ। [कंचन कुछ कहने लगता है; परन्तु राकेश रोक देता है]...बस बस अब रहने दीजिए और बहस...और देखिए अभी इनका किसी और कम्पनीसे ज़िक्र न कीजिएगा।

कंचन— यह भला कैसे हो सकता है—आपसे वचन करके औरोंसे सौदा करूँ? अच्छा तो दिलाइए कुछ पैसे...मुझे तो अभी मकानका किराया भी देना है। [राकेश मेजका खाना खोल कर "चेक बुक' निकालता है]

...जी नहीं, चैक देकर मुझे इनकमटैक्सके झगड़ेमें न डालिये...चैक ही देना है तो १,७५० रुपयेका दीजिए।

राकेश— नक़द इस समय नहीं है। कल ले जाना...।

कंचन— खाली हाथ कैसे जाऊँ! जितने हैं उतने तो दीजिए...बाक़ी कल ले जाऊँगा।

राकेश— [जेबसे निकाल कर गिनते हुए] यह लो १०० तो लो—शेष फिर।

कंचन— धन्यवाद, नमस्कार!

[कंचन जाता है—राकेश सिगरेट निकाल कर सुलगाता है। दरवाजे पर दस्तक होती है और बादिल तेलंगानी, लम्बे-लम्बे पट्टे, छोटी-छोटी दाढ़ी, दुबला-पतला शरीर, ढीला कुरता पहने मुँहमें सिगरेट लगाये, प्रवेश करते हैं]

राकेश— [कुर्सी परसे उठकर हाथ मिलाते हुए] आइए बादिल साहब, बहुत देरसे प्रतीक्षा कर रहा हूँ आपकी...

बादिल— हाज़िर हूँ—कहिए मेरे लायक़ क्या ख़िदमत है ?

राकेश— यह गाना है एक—इसमें यह 'सूरत' शब्द नहीं बैठता... इसको बदलना चाहता हूँ ।

बादिल— इसमें क्या मुश्किल है ? अभी पाँच मिनटके अन्दर अन्दर हो जाता है ।

राकेश— आप जैसे गुणी पुरुषसे यही आशा है ।

बादिल— शुक्रिया, मगर रुपये लगेंगे सौ !

राकेश— सौ ! एक शब्दके लिए ?

बादिल— जी हाँ ।

राकेश— इतनी सी बातके लिए १०० ! ग़ज़ब करते है आप ?

बादिल— हज़रत विलायतमें डाक्टर है, आँखके आपरेशनके ५,००० से १०,००० रुपया तक ले लेते हैं । अब आप कहेंगे ज़रा सी आँखका ! मेहनत तो उतनी ही पड़ेगी चाहे सारा गीत बदलनेको कहिए, चाहे एक लाइन, चाहे एक शब्द ।

राकेश— फिर भी, सौ रुपया एक शब्दके लिए ।

बादिल— मैं भी तो शब्दका आपरेशन ही करने वाला हूँ—हुज़ूर आप का दिया खाते हैं...

राकेश— नहीं साहब, हमको आपसे काम, आपको हमसे काम...यह लीजिए साहब [जेबमेंसे ५० रुपये नक़द निकालकर उसके हाथमें रखता है]

बादिल— कहाँ है गीत...दीजिए [राकेश एक काग़ज़ उसके हाथमें देता है—देखकर]...यह किस अनाड़ीने लिखा है...न क़ाफ़िया, न रदीफ़, न सुर, न ताल...कितने पैसे दिये आपने इसके लिए ?

राकेश— वह तो समझिए उसका कुछ पहले जन्मका देना था जैसे—

बादिल— किसने बेचा यह आपके पास ?

राकेश— मैं तो उसे जानता भी नहीं घुड़दौड़ पर मिला—पहली वार...

वादिल— जीते हुए होंगे आप—

राकेश— कुछ यही समझो।

वादिल— हैं तो यह सब हमारे अपने भाई ही—कहना अच्छा नहीं दिखता लेकिन घुड़दौड़ पर हो, या कोई मुशायरा हो, या कोई पीने पिलानेकी महफ़िल हो—ऐसी जगहों पर इन गीत वेचनेवालोंका एतवार नहीं किया जा सकता।... अरे, इससे अच्छा गीत तो मेरा खानसामा लिख लेता है—यह गीत तो ऐसे नहीं चल सकता।

राकेश— देखिए वादिल साहव मैं पैसे दे चुका हूँ, अव और नहीं दे सकता...इसका प्रयोग करना ही होगा...आप इस शब्दको वदल दीजिए...क्या मालूम यही गाना चल जाय; मेरा अपना अनुभव तो यही कहता है...वह गाना जिसे हम वेढंगा कहकर निकाल देना चाहते थे, वच्चे-वच्चेकी ज़वान पर ऐसा चढ़ा कि हर गली, हर कूचे, हर सड़क पर कई महीनों तक सुनाई देता रहा।

वादिल— जैसे आपका हुक्म। ग़ल्तियाँ वताना मेरा फर्ज था वह मैंने कह दिया। आप इसे ही ठीक कराना चाहते है तो यही सही—मैं इसे लिये जाता हूँ, सात वजे तक मँगवा लीजिए।

राकेश— अच्छा !

[जाता है। चपरासी एक परची लेकर आता है]

राकेश— [सोचते हुए] गंगाप्रसाद ! ...पहले तो नहीं सुना कभी... अच्छा देखते है, आज कवियोंका ही दिन मालूम होता है [चपरासी से] वुलाओ उन्हें...

[एक शर्मीला-सा सीधा सादा युवक, मामूली कपड़े पहने अन्दर आता है]

राकेश— [उसे ऊपरसे नीचे तक परखते हुए] आप कविता लिखते हैं क्या ?

गंगाप्रसाद— जी हाँ, प्रयत्न तो करता हूँ; कुछ लिखा भी है, एक दो कवि-सम्मेलनमें भी पढ़ी हैं; लोगोंके पसन्द भी आयीं; पत्रोंने छापी भी—परन्तु कुछ पैसे-वैसे तो मिले नहीं—कविता लिखने और जीविका कमानेमें जैसे कोई जोड़ न हो। कुछ मित्रोंने बताया कि बम्बईमें गीतोंकी बड़ी माँग है—पैसे भी अच्छे मिल जाते हैं—इसी उद्देश्यसे यहाँ चला आया...:

राकेश— किस किसके पास बेचकर आये हैं अपने गीत ?

गंगाप्रसाद— सीधा आप हीके पास चला आ रहा हूँ।

राकेश— देखें आपकी रचनाएँ! [गंगाप्रसाद चार पाँच गीत देता है। राकेश पढ़ता है—प्रभावित होता है; परन्तु अपने भाव छिपाये रखनेकी कोशिश करता है] देखिए कवि महाशय, मैं आपकी कठिनाइयाँ समझता हूँ—कलाकारों का जीवन कैसा कठिन होता है इसका भी मुझे आभास है—परन्तु जब तक यह गीत गाकर तथा बजाकर न देख लिये जायँ, इनको स्वीकार करनेम असमर्थ हूँ। बुरा न मानिये, मैं भी विवश हूँ [घण्टी बजाता है—चपरासी आता है] देखो, मायुर साहबको बुलाओ।

चपरासी— [झुककर] बहुत अच्छा हुजूर !

[चपरासी जाता है]

राकेश— [कविसे] मैंने अपने म्युजिक डायरेक्टरको बुलाया है—उनको आपके गीत दिखाता हूँ। वह इस पियानों पर इन्हें बजाकर देख लेंगे—आप चाहें तो तब तक हमारा स्टूडियो देखिए—वहाँ रिहर्सल हो रही है। आपको कुछ अन्दाज़ा हो जायगा कि हमारा फिल्म-संसार कैसे चलता है...

[मायुर साहब आते हैं—पीछे-पीछे चपरासी]

राकेश— हाँ, माथुर साहव, मैंने आपको वुलाया है [परिचय कराते हुए] श्री गंगाप्रसादजीसे मिलिए—यह कुछ गीत लिखकर लाये है। पहली वार हमारे पास आये है—मै इन्हें निराश करना नही चाहता [गीतोंके कागज देते हुए] आप इनको वजा कर देखिए, कैसे चलते है—मै स्वयं सुनूँगा...और चपरासी [गंगाप्रसादको संकेत कर] इन्हें योगेन्द्र साहवके पास ले जाओ और कहो कि सारा स्टूडियो दिखलायें [गंगाप्रसाद तथा चपरासी जाते है, माथुर गीत पढ़ता है फिर पियानो पर वजा कर देखता है। खुशीसे उछलता है]

माथुर— [उत्तेजित] वहुत अच्छा है साहव—'जीनियस' है यह आदमी। किस खूवसूरतीसे लिखी है कविता—कैसे प्यारे-प्यारे मधुर छन्द वाँधे है। वड़ी चलती हुई धुन वनेगी इसकी—यही एक गीत अच्छी तरह गाया जाय तो वस हमारी चाँदी ही चाँदी है। एक वार इस मनुष्यको वम्वईकी हवा लग गई, तो फिर मुश्किल हो जायगी...

राकेश— वह भी देखा जायगा। अभी तो तुम इन सवकी नकल करके रखो। खरीदूँगा एक ही—वाक़ी अपनी सुविधा पर इस्तमाल करेंगे। [माथुर कुछ अचम्भित दृष्टिसे देखता है] देखते क्या हो? यह क्या कर लेगा हमारा—कोई ऐसी वैसी वात की तो वम्वईमें रहना असम्भव कर दूँगा इसका!

[माथुर कागज पेन्सिल लेकर शीघ्रतासे लिखता है। राकेश शीशे की खिड़कियोंमेंसे स्टूडियोकी ओर देखे जाता है। कुछ देर वाद माथुर कागज राकेशको देता है]

राकेश— धन्यवाद [स्टूडियो की ओर इशारा करके] कवि महाशय भी आ रहे है—देखो जरा सम्भलकर वात करना।

[गंगाप्रसाद वड़ी उत्सुकतासे अन्दर आता है]

राकेश— आइए, वैठिए...

गंगाप्रसाद— [झेंपते हुए] आपको पसन्द आया कुछ ?
राकेश— हाँ, अच्छे हैं; परन्तु हमारे मतलबका तो एक ही दिखता है।
गंगाप्रसाद— बस ! केवल एक ही ?
राकेश— इनमेंसे तो एक ही है—आप अपनी और रचनाएँ भी लायें—उनमेंसे देखेंगे। सम्भव है कुछ और हमारे कामकी निकल आवे।
गंगाप्रसाद— अवश्य लाऊँगा—आपकी कृपा है—इसका क्या देंगे आप ?
राकेश— आप ही कोई उचित मूल्य बताइये।
गंगाप्रसाद— आप नित्य ख़रीदते हैं, आपको इन चीज़ोंकी परख है—आप ही कहिए।
राकेश— २५ रुपये।
गंगाप्रसाद— [अकस्मात् चोट खाकर] पच्चीस ? मुझे तो कहा गया था कि एक भी गीत चल जाय तो हज़ारों रुपये मिल सकते हैं।
राकेश— हो सकता है—परन्तु इसके नहीं।
गंगाप्रसाद— [खिन्न होकर] इतनेमें तो नहीं दे सकता।
राकेश— [साधारणतया] जैसी आपकी इच्छा—मैंने तो सोचा था आप पहली बार हमारे पास आये हैं और पहली बार बम्बईमें—आपको निराश नहीं करना चाहिए।
गंगाप्रसाद— यह तो आपकी कृपा है—परन्तु पच्चीस रुपयेमें भी किसी को गीत खरीदते सुना आपने ? आप तो इतने बड़े सेठ हैं—कमसे कम ५० तो दीजिए।
राकेश— मैंने तो अपनी क़ीमत बता दी है—आगे आप जैसा चाहें।
गंगाप्रसाद— तो रहने दीजिए।

[जानेको उठता है]

राकेश— [काग़ज़ लौटाते हुए] यह लीजिए।

[गंगाप्रसाद कुछ अनिश्चित भावसे दरवाज़े पर रुक जाता है—एक पाँव अन्दर एक बाहर—फिर वापस आता है]

गंगाप्रसाद— अच्छा पच्चीस ही दीजिए।

[राकेश जेबमेंसे निकाल कर देता है, गंगाप्रसाद विना कुछ कहे लेकर चला जाता है]

राकेश— [माथुरसे] क्यों उस्ताद, [हाथ बढ़ाकर] लाओ हाथ मिलाओ...कहो कैसी रही ?

[हँसता है—दोनों खुशीसे हाथ मिलाते हैं, परदा गिरता है]

रेत और सीमेण्ट

•

रेत और सीमेण्ट

[समय—संध्याके सात बजे। स्थान—ठीकेदारका घर। कमरा बहुत-सी बढ़िया चीजोंसे अटा पड़ा है, क्योंकि ठीकेदार साहबने पिछली लड़ाईमें खूब रुपया बनाया था। किन्तु इन क़ीमती चीजोंकी ढंगसे व्यवस्था नहीं की गई है। कुछ चीजें ऐसी भी हैं जिनसे ठीकेदारकी कलात्मक वृत्तियोंके अभावका पता चलता है, जैसे दीवारपर टँगे फ़िल्मी सितारोंके चित्र वा रंगदार तस्वीरोंवाले कैलेंडर इत्यादि। शारदा सोफ़ेपर बैठी सिलाइयां बुन रही है। रह-रहकर खिड़कीके बाहर सड़ककी ओर देख लेती है। कुछ देर बाद एक मोटरका हार्न सुनाई देता है। शारदाके हाव-भावसे मालूम हो जाता है कि यह वही मोटर है, जिसकी वह प्रतीक्षा कर रही थी। बरामदेके सामने मोटर रुकती है और केशवलाल अन्दर आता है।]

शारदा— बहुत देर लगा दी आज आपने ?

केशवलाल— अब दो-चार दिन तो देर ही लगेगी। जब तक इस पुलका उद्घाटन नहीं हो जाता, सिरपर बोझ-सा लगता है। मैं चाहता हूँ कि यह काम जल्दीसे समाप्त हो, ताकि मैं निश्चिन्त होकर उधर रेलकी लाइनकी ओर ध्यान दूँ। पचास मील लम्बी लाइन बनानेका ठीका ले लिया है, वह कोई एक दिनमें थोड़े ही हो जायगा ?

शारदा— [मुसकराकर] मैं भी तो यही चाहती हूँ कि पुलका उद्घाटन निर्विघ्न हो जाय, क्योंकि मुझे भी तो अपनी चीजें खरीदनी हैं। याद है न अपना वादा ? अब तो समय आ रहा है।

केशवलाल— हाँ, हाँ, याद है। क्या तुम उस वादेको भूलने दोगी ? कहो, क्या लेना है ?

शारदा— हीरेके टाप्स और अँगूठी और उनके बीचमें एक-एक ऐमरल्ड..

केशवलाल— यह काम पास हो जाय, पैसे वसूल कर लें, तो जो मनमें आय, लें लेना। आशा तो है कि दास साहबकी कृपासे कुछ दाल-दलिया हो ही जायगा। सच कहता हूँ कि इंजीनियर तो कई देखे, किन्तु हम ठीकेदारोंके कामका आदमी तो बस यही एक है।

शारदा— क्यों न हो, क्या हमने उसके लिए कुछ कम किया है? और कौन ठीकेदार होगा, जो इस तरह दिल खोलकर खिलाता-पिलाता हो! जो माँगा, झटसे ले दिया; जो नहीं माँगा, वह भी दिया। अच्छा, यह तो आपने बताया ही नहीं, कि आ रहे है न वे लोग?

केशवलाल— हाँ, वहीसे तो आ रहा हूँ। दासको भी तो बहुत काम करना है। पुलके उद्घाटनके लिए मिनिस्टर साहब आ रहे हैं। बड़ा शानदार जल्सा होगा। उसके लिए सारी व्यवस्था करनी है। दासने कहा है कि खानेके लिए तो वे लोग नहीं ठहरेंगे, क्योंकि उन्हें एक-दो जगह और भी जाना है; वैसे ही शामको थोड़ी देरके लिए आवेंगे।

शारदा— मैंने तो उनके लिए समोसे वग़ैरह बनानेको सामान मँगाकर रखा है।

केशवलाल— अच्छा ही है, थोड़ी ह्विस्की पिला देंगे और समोसा खिला देंगे! जानती तो हो, तुम्हारे घरके बने समोसे उन्हें कितने पसन्द हैं!

शारदा— तो बैरेको बुलाकर जरा समझा दूँ। नया आदमी है।

केशवलाल— कैसा काम कर रहा है?

शारदा— आदमी तो चुस्त है, काम भी समझता है; लेकिन मुझे इसकी चतुराईसे कुछ शक-सा होने लगता है। कहीं किसी दिन हाथ ही न लगा जाय!

केशवलाल— दो-चार दिन और देख लो, नहीं तो किसी दूसरेका प्रबन्ध कर लेंगे।

शारदा— सो तो करना ही होगा ।

केशवलाल— देखो शारदा, एक काम करना । एकआध ड्रिंकके बाद तुम फ्लश खेलनेका प्रस्ताव करना । वे तो कहेंगे कि समय बहुत थोड़ा है इत्यादि, पर तुम अनुरोध करना । [आँख मारकर] मैं आज दो-चार सौ रुपया हारना चाहता हूँ !

शारदा— क्यों, आज फिर ?

केशवलाल— हाँ, बस यह अन्तिम बार है । फिर इसकी आवश्यकता न होगी ।

शारदा— अच्छा !

केशवलाल— यदि वे आज खेलनेके लिए राजी न हुए, तो तुम मिसेज दासको कल सवेरेके लिए पक्का कर लेना । जब आयँ, तो ब्रिज खेलना और कोई ढाई-तीन सौ तक हार जाना, ज्यादा नहीं । बाकी फिर सरकारसे पूरे पैसे वसूल कर लेनेके बाद देखा जायगा ।

शारदा— [कुछ अप्रसन्न-सी होकर] जैसा कहो; वैसे तो मैंने आज ही वायलका थान भी भेजा है उनके यहाँ ।

केशवलाल— किसके हाथ ?

शारदा— इसी बैरेके हाथ भेजा था ।

केशवलाल— अभी इस बैरेको ऐसा काम मत सौंपो । नया आदमी है, न जाने कहाँ-कहाँ क्या-क्या कहता फिरे !

शारदा— अरे हाँ, इस बातका तो मुझे ध्यान ही नहीं आया । सौरी । अच्छा उसे समोसोंके लिए तो कह दूँ । [आवाज देती है] बैरा !

बैरा— [दूरसे] आया जी ।

[बैरेका प्रवेश]

शारदा— देखो, दो-चार लोग हमसे मिलने आ रहे हैं । तुम छः बोतल सोडा और बर्फ़ ले आओ जल्दीसे । [केशवलालसे] क्यों, छः काफ़ी होंगी न ?

केशवलाल— हाँ।

शारदा— जो मटर-आलू उबले पड़े हैं उसके समोसे तलने हैं। चार-छः पापड़ भी भून लेना। जब कहूँगी, तो ये चीजें ले आना।

बैरा— जी हुजूर। [जाता है]

शारदा— देखो, कैसे शिष्टतापूर्वक बात करता है। देखनेमें भी साफ़-सुथरा है।

[बाहर मोटर रुकनेकी आवाज़ आती है]

केशवलाल— वे आ गये शायद। [उठकर बाहर बरामदेकी ओर जाता है और दास तथा श्रीमती दासको लेकर आता है।]

शारदा— नमस्कार।

श्रीमती दास—नमस्कार बहन शारदा। भई वायलके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। मुझे बेहद पसन्द है। कितनी पतली और हल्की है।

शारदा— अच्छा हुआ आपको पसन्द आ गई।

करुणा— उसके पैसे तो बताइए, कितने हैं?

[अपना हैंडबैग खोलती है]

शारदा— [उसका हाथ पकड़कर] आप बैठिए तो, पैसे कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं!

करुणा— नहीं, यह बात ठीक नहीं। आपने पहले भी एक-आध बार मुझे यूँ ही बातों-बातोंमें टरका दिया था।

शारदा— आप तो लज्जित कर रही हैं मुझे। क्या मैं आपसे ज़रा-सी चीजके लिए पैसे लेती अच्छी दीखती हूँ? क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं कि बच्चोंके फ्रॉकोंके लिए थोड़ी-सी वायल भी भेज सकूँ?

करुणा— आप बहुत तकलीफ़ करती हैं।

शारदा— इसमें तकलीफ़ कैसी? अच्छा, आप यह बताइए कि आप पिएँगी क्या? क्यों दास साहब, आप?

केशवलाल— [हँसकर]—हम लोगोंको तो पूछनेकी जरूरत नहीं, मिसेज दाससे पूछिए।

करुणा— मेरा भी आपको पता ही है—वही ताजा नीबू सोडेके साथ।

शारदा— [बैरेसे]—पहले सोडा, बर्फ़ और ह्विस्की दे जाओ। फिर दो गिलास सोडा और उसमें ताजा नीबू मिलाकर लाओ। [करुणा] थोड़ी-सी चीनी तो डाल दे न?

करुणा— हाँ, मगर बिल्कुल थोड़ी-सी।

शारदा— [बैरेसे]—जाओ, तुम यह ले आओ। और हरीसे कहना जरा गरम-गरम समोसे बनाय।

करुणा— नहीं, समोसे रहने दीजिए। हमें खाना खाने बाहर जाना है।

शारदा— एक-आध टुकड़ा ही सही। क्यों दास साहब?

दास— इस घरमें बने समोसेके लिए तो मैं कभी भी ना नहीं कर सकता। [केशवलालसे] मिनिस्टरके आनेकी तारीख तो पक्की हो गई है। सत्ताईसको सुबह आयेंगे और अगले दिन शामको लौट जायेंगे। सिन्हाका भी तार आया है। अब तो प्रोग्राम बनाना-भर बाक़ी है।

करुणा— शुक्र है भगवान्‌का कि यह काम समाप्त हो रहा है। काम था कि एक मुसीबत थी! ज्यों सवेरेसे शुरू होता था, तो बस सारा दिन काम, काम, काम! न इन्हें अपनी सुध थी, न घरकी। मेरे तो नाकमें दम कर रखा था।

केशवलाल— सच कहती हैं आप, इतना काम किया है दास साहबने कि क्या कोई इंजीनियर करेगा!

दास— भाई, तुम्हारे सहयोगसे ही तो सब-कुछ हो सका है।

केशवलाल— यह तो आपकी कृपा है। हमें तो केवल काम करना था, सारी ज़िम्मेदारी तो आपकी ही थी। जिस चतुराईसे आपने इसे निभाया है, सब जानते हैं। इसीलिए तो काम नियत समयसे तीन महीने पहले ही समाप्त हो गया!

[बैरा चांदीकी ट्रेमें पीनेकी चीजें लेकर आता है। करुणा और शारदा अपना-अपना गिलास उठा लेती हैं।]

दास— [ह्विस्कीकी बोतल देखकर]—स्काच-क्रीम ! अरे दोस्त, यह कहाँसे मार लाये ? [गिलासमें डालते हुए] इसे तो आजकल देखना ही दुर्लभ हो गया है !

केशवलाल— [अपना गिलास भरकर]—आपके लिए तो चीज़ अच्छी ही चाहिए।

दास— आपका तो रसूख इतना है कि न-जाने कहाँ-कहाँसे कौन-कौन-सी चीज़ ले आते हैं !

केशवलाल— आपकी कृपासे इस नाचीज़के काम हो ही जाते हैं। कहिए, आपको भी मँगवा दें ?

दास— नेकी और पूछ-पूछ ?

केशवलाल— जितनी चाहे ! अगले हफ़्ते तक आ जाय, तो ठीक है न ? एक बोतल चाहिए, तो अभी है मेरे पास।

दास— किन्तु लूँगा एक शर्तपर—पैसे अभी ले लें। मैं जानता हूँ कि पैसेके मामलेमें तुम बहुत लापरवाह हो। मेरी मोटर के लिए जो टायर मँगवाकर दिये थे, उसके पैसे भी अभी तक नहीं बताये।

केशवलाल— पैसेकी बात करके लज्जित न किया करें मुझे। जहाँ पैसेका सवाल आया, वहाँ मित्रता नहीं रहती। आपके हमारे सम्बन्ध ऐसे नहीं, जहाँ पाई-पाईका हिसाब करना ऐसा आवश्यक हो।

शारदा— [बैरेसे, जो अभीतक वहीं खड़ा है]—देखो, तुम ये चीज़ें मेज पर रख दो और कुछ खानेको ले आओ।

बैरा— बहुत अच्छा हुज़ूर। [जाता है]

करुणा— सच कहती हूँ, खानेके लिए कुछ न मँगाओ। जरा भी भूख नहीं है।

शारदा— मुझे तो आशा थी कि आप खाना हमारे साथ ही खायेंगी।

करुणा— क्या करें, लाचारी है।

शारदा— तो आइए, एक-दो हाथ ताशके ही हो जायँ।

करुणा— फिर किसी दिन सही, अभी जरा जल्दी जाना है।

शारदा— जा लेना, अभी तो आई हैं आप। [घड़ी देखकर] अभी खानेकी भी तो बहुत देर है।

केशवलाल— और जब तक आप लोग पहुँचेंगे नहीं, कोई खाना खायगा नहीं!

करुणा— अच्छा, जैसी आपकी इच्छा। लेकिन होंगे दो-चार हाथ ही, क्योंकि हमें जल्दी ही जाना होगा।

शारदा— [केशवसे]—जरा आलमारीसे ताश और काउण्टर तो निकालिए।

दास— कैसा चस्का है इन स्त्रियोंको भी ताशका!

शारदा— आप भी तो आइए न। दिन-भर काम करके थक गये होंगे। इससे मन कुछ बहल जायगा।

[केशवलाल आलमारी खोलकर ताश निकालता है। सब लोग मेजके आसपास बैठ जाते हैं। केशवलाल सबको एक-एक सौ रुपयेके काउण्टर गिनकर दे देता है।]

दास— पूल कितना? कोई सीमा बाँधो।

केशवलाल— आप तो जानते हैं, इस घरमें किसी चीजकी कोई सीमा नहीं है। जब खेलना ही दस-पन्द्रह मिनट है, तो सीमा कैसी?

[कुछ देर ह्विस्कीके साथ इसी प्रकारकी बातचीत चलती रहती है। फिर ताशके पत्ते बाँटे जाते हैं। बैरा खानेका सामान ले आता है और मेजके आसपास घूमकर सबको दिखाता है। इसी बहाने वह सबके पत्ते भी देख लेता है और ताशकी बाजी किस तरह चल रही है यह भी भाँप जाता है।]

करुणा— [पहली बाजी समाप्त होनेपर शारदासे] मैं आपकी जगह होती, तो इस हाथपर इतना न लगाती। आखिर मामूली सत्तियोंका जोड़ा ही तो है।

केशवलाल— मैंने इसे कई बार समझाया है, पर जब यह खेलने बैठती है, तो ऐसे आवेशमें आ जाती है कि अपनी सुध-बुध ही भूल जाती है। बैरा, देखो बर्फ़ और लाओ।

[बैरा जाता है। नई बाजी शुरू होती है। सब लोग दाँव लगाते हैं और चाल बढ़ती चली जाती है।]

करुणा— मेरे आठ आये।

शारदा— मेरे सोलह।

[बैरा चुपकेसे आता है और उत्सुकतासे बाजीका रुख देखता है।]

केशवलाल— मेरे बत्तीस।

दास— यह लो, बत्तीस यह रहे।

करुणा— आप लोग तो बढ़ते ही चले जा रहे हैं; मैं तो पास। [पत्ते फेंक देती है]

शारदा— मैं भी पास। [पत्ते रख देती है]

केशवलाल— यह हाथ मुझे या तो राजा बनायगा या रंक! यह लीजिए दास साहब, मेरे चौंसठ।

दास— [मुसकराता हुआ]—तो चौंसठ मेरे भी लो। [बैरा बर्फ़ आगे बढ़ाता है]

केशवलाल— [बैरेसे]—ठहरो जी, यहाँ घमासानका रण पड़ रहा है। दास साहब, यह रहे चौंसठ और...

दास— [अपने गिलासमें ह्विस्की तथा बर्फ़ डालते हुए]—यही बात है, तो लो भई एक और चौसठ और शो करो तो...

[केशव पत्ते दिखाता है। पत्ते बिल्कुल मामूली हैं, इतनी बड़ी चाल खेलनेके योग्य नहीं।]

दास— [अपने पैसे बटोरते हुए]—अच्छा! इतना ब्लफ़ [झूठ] खेलते हो तुम! मैं तो डरकर पत्ते फेंकने जा रहा था।

केशवलाल— बैरा, अब लाओ ह्विस्की इधर। ज़रा ग़म-ग़लत करें। कितने बने दास साहब? बहुत बड़ा हाथ मारा आपने तो!

दास— [गिनकर] दो सौ अस्सी रुपये ।

केशवलाल— हे भगवान् !

दास— सब लोग अपने-अपने काउण्टर गिनो तो । क्यों ठीक है न हिसाब ?

केशवलाल— जी हाँ, और ३६ मिसेज दासके देने हैं । मिलाकर ३१६ हुए ।

करुणा— [कलाईपर बँधी घड़ी देखकर]—है तो बहुत धृष्टता, परन्तु अब हमें चलना चाहिए ।

केशवलाल— चले जाइएगा । और नहीं खेलना चाहते, तो ताश बन्द कर देते हैं । दास साहब, एक ह्विस्की तो और पीजिए । बैरा, साहब को ह्विस्की दिखाओ । [फिर जेबमेंसे रुपये निकालकर दासके हाथमें देते हुए] यह लीजिए तीन नोट—सौ-सौके हैं और दो दस-दसके । ताशका कर्जा तो मेज़पर ही चुका देना चाहिए ।

दास— [अपना बटुआ निकालकर चार एक-एक रुपयेवाले नोट देता है]—मिस्टर केशवलाल, आज तो आप खूब हारे !

केशवलाल— अगली बार क़सर निकाल लूँगा !

शारदा— यह सदा हारते ही हैं, जीते कब हैं ?

करुणा— यह तो आपके प्रेमकी कृपा है । क्यों ठीक है न !

[सब हँसते हैं । सहसा किसी मोटरके आनेकी आवाज आती है और सबके कान खड़े हो जाते हैं ।]

शारदा— कौन होगा, इस समय ?

करुणा— आपके और मेहमान आ रहे हैं । हमें अब आज्ञा दीजिए । देर हो रही है । [दाससे] क्यों, चलें ?

दास— चलो, चलते हैं ।

[सिन्हा साहब आते हैं ।]

केशवलाल— बड़ी लम्बी उम्र है आपकी ! अभी-अभी हम सब आपही को याद कर रहे थे ।

सिन्हा— क्षमा कीजिएगा, मैं यूँ ही बिना खबर किये चला आया। आपके घरके सामनेसे जा रहा था, जब दास साहबकी गाड़ीपर नजर पड़ी; सोचा जरा इनसे भी मिल लें। [दाससे] उद्घाटनके लिए मिनिस्टर साहब आ रहे हैं, यह तो आपको पता होगा ही।

दास— जी हाँ।

सिन्हा— अब प्रोग्राम क्या बनाना है ?

केशवलाल— [सिन्हाके कन्धोंपर हाथ रखकर]—जरा बैठिए तो थोड़ी-सी ह्विस्की ?

सिन्हा— धन्यवाद; इस समय नहीं। मुझे बहुत जल्दी कलेक्टर साहबके पास जाना है। उनसे प्रोग्राम तय करके आप लोगों से बातचीत करूँगा। मिनिस्टर साहबके लिए एक पार्टी तो सरकारी होगी ही, एक पब्लिककी तरफ़से भी हो जाय तो बहुत अच्छा हो !

केशवलाल— आप यह सब मेरी ओर देखकर क्यों कह रहे हैं ?

सिन्हा— [कृत्रिम मुसकराहटसे]—इसलिए कि यहाँकी पब्लिकमें तो सबसे माननीय आप ही हैं !

केशवलाल— ना भैया, मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं !

सिन्हा— आप जानते हैं कि सरकारी रुपयेसे तो ऐसी पार्टियाँ हो नहीं सकती। जब ये बड़े लोग आ टपकते हैं, तो आप सबको ही तकलीफ़ देनी पड़ती है। और करें भी क्या ? जब तक दो-चार ठाठदार पार्टियाँ न हों, तो मिनिस्टर लोग खुश भी तो नहीं होते !

केशवलाल— सच्ची बात तो यह है भाई साहब कि जब आपके मिनिस्टर पिछली बार आये थे, तो मेरा एक हजार रुपया खुल गया था ! अब तो मेरे पास इतने पैसे हैं नहीं !

सिन्हा— क्या कहते हैं मिस्टर केशवलाल ? पुलका उद्घाटन हुआ नहीं कि आप मालामाल हो जायँगे !

केशवलाल— जब होंगे, तो देखा जायगा। अभी तो बड़ी मुश्किल है।

सिन्हा— आपके लिए क्या मुश्किल है?

केशवलाल— आप दास साहबसे कहिए। यदि उनका सहयोग हो, तो बहुत-सी मुश्किल आसान हो सकती है।

दास— तुम कल सुबह किसी समय दफ्तर आओ, तो देखेंगे। कोई छोटा-मोटा एस्टीमेट बनाकर दे दो। पुलके खातेमें डाल देना, प्रबन्ध हो जायगा।

सिन्हा— बहुत अच्छा। तो मैं चलूँ। [दाससे] आपसे ब्योरेवार बातचीत तो कल ही होगी। [जाता है]

केशवलाल— यह लो, मिनिस्टर साहबके आनेकी हमको तो चपत लग गई!

दास— आपको चपत कैसी? चपत तो लगनेवालोंको लगेगी।

[टेलीफोनकी घण्टी बजती है। केशवलाल उठकर सुनता है।]

केशवलाल— कौन? मिस्टर दास? अच्छा! आप थामे रखिए। [दासको इशारा करता है]

दास— [टेलीफोन पकड़कर]—मैं दास बोल रहा हूँ। क्या?... कब?...कहाँसे?...दो खम्भे!...दो खम्भे?...कैसे हुआ?...अच्छा! तो काम रोक दो...मैं अभी आ रहा हूँ...

[टेलीफोन पटककर रखता है और वहीं पास पड़ी कुर्सी पर बैठ जाता है। उसके मुखपर घबराहट है।] केशव, शारदा, करुणा [तीनों एक साथ]—क्या हुआ?

दास— [चिन्तित स्वरमें]—पुलके दो खंभोंमें दरार पड़ गई है। इस बातको ज़रा बैठकर ध्यानसे सोचना पड़ेगा। [पत्नीसे] तुम चलो, मैं ज़रा देरसे आऊँगा।

करुणा— क्या इसी समय पुलपर जाना पड़ेगा?

दास— हाँ। तुम वहाँ पहुँचकर मोटर यहीं भेज देना।

करुणा— कितनी देर लगेगी?

दास— कोई आधा घण्टा, शायद कुछ अधिक भी लग जाय ।

[करुणा जाती है । शारदा उसे मोटर तक पहुँचाने जाती है ।]

केशवलाल— खम्भोंमें दरार कैसे पड़ गई ! क्या स्थिति कुछ गम्भीर है ?

दास— तुम पूछते हो गम्भीर ? वहां तो सत्यानाश हो गया है ! दो खम्भे बिल्कुल दब गये हैं । दस मजदूरोंको चोट आई है, जिनमेंसे दोकी दशा शोचनीय है । अगर इनमेंसे एकको भी कुछ हो गया, तो हमारा सर्वनाश हो जायगा ।

केशवलाल— यह तो बहुत बुरा हुआ । इसका उपाय क्या होगा ।

दास— [आवेशमें]—अब उपाय पूछते हो ? मैंने तुमसे कहा नहीं था कि सीमेण्टका मिश्रण ठीक रखो । तुम्हें तो लालच खाये जा रहा था । चाहते थे सारी उम्रकी कमाई इस एक पुलमें से ही निकले ! और वह भी अपने ही लिए नहीं, अपनी सात पुश्तोंके लिए भी ! माना कि कई जगहें ऐसी होती हैं, जहाँ सीमेण्ट थोड़े अनुपातमें लगानेसे भी काम चल जाता है । परन्तु वह जगह खंभे नहीं । खम्भोंका तो सीमेण्टपर ही दारोमदार है । और अगर खम्भे ही पक्के न हुए, तो पुल खड़ा कैसे रह सकता है ?

केशवलाल— अब यह दुर्घटना हो गई, तो आप भी ऊपर चढ़े आ रहे हैं ! वैसे मैंने तो जो-कुछ किया, सब आपकी सलाह और सहयोगसे ही ।

दास— जब नीव खुदवा रहे थे, तो तुम्हींने तो कहा था कि पचीस फुट गहराईकी बजाय १७ फुट कर दो, कौन देखता है ? मिट्टी हीमें तो दब जायगी ।

केशवलाल— [तमतमाते हुए]—स्वयं तुम्हींने तो सब-कुछ पास किया है । अब सारा दोष मेरे सिरपर मत थोपो । मैं तो जब कमाऊँगा, तब कमाऊँगा; अभी तक तो तुम्हारा ही घर भरता रहा हूँ ।

तुम्हारी माँगें ही पूरी नहीं होतीं । कभी पेट्रोल, कभी टायर, कभी पागलका थान और अब ज़िन्दगी...

दास— [दाँत पीसकर]—हूँ, यह बात है !

केशवलाल— जब तुम अपने बाल-बच्चोंको कश्मीर भेज रहे थे, तो मुझे उनके आने-जानेके टिकट तथा वहाँ हाउस-बोटमें रहनेकी व्यवस्था करनेको कहा था या नहीं ?

दास— झूठ मत बोलो । मैंने कहा था तुम्हें यह सब करनेको ?

केशवलाल— झूठ ! तुम इसे झूठ कहते हो ? मेरे पास रसीदें रखी हैं सब ! कहो, तो अभी दिखा दूँ । तुम्हारी मोटरके टायर किसने ख़रीदे थे ? क्या यह भी झूठ है ? जहाँ तक कहनेका सवाल है, मुझसे तुमने कहा या तुम्हारी पत्नीने, इसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता । आजकल तो यह तरीक़ा ही बन गया है कि अफ़सर लोग स्वयं कुछ नहीं कहते, उनकी स्त्रियाँ ही ढंगसे अपनी जरूरतें बता देती हैं ।

दास— [ग़ुस्सेसे तमतमाते हुए]—इस तरह अफ़सरोंसे टक्कर लेकर आज तक तो किसीने कुछ लाभ उठाया नहीं । अगर तुम सोचते हो कि इस तरह बढ़-चढ़कर बातें करनेसे तुम बच निकलोगे, तो तुम्हारी यह ग़लतफ़हमी भी जल्दी ही दूर हो जायगी । जब इंजीनियर और ठीकेदारमें झगड़ा हो, तो जीतेगा तो इंजीनियर ही ! तीन अफसर मेरे नीचे काम करते हैं और तीन ऊपर । उन सबके हस्ताक्षर हैं सब काग़ज़ोंपर । मेरा अकेलेका कोई क्या बिगाड़ लेगा ? किन्तु तुम्हारा छुटकारा तो किसी सूरतमें नहीं होगा ।

केशवलाल— मैं इन धमकियोंसे डरनेवाला नहीं हूँ ।

दास— [व्यंगसे]—हूँ । यह बात है ! तो मेरा क्या बिगाड़ लोगे ? करके देख लो, जो मनमें आये ।

केशवलाल— बाबा, इस तरह लड़ने-झगड़नेसे तो कोई लाभ नहीं। दोनों में फूट पड़ गई, तो दोनोंको ही नुक़सान होगा। ऐसी डरने की भी क्या बात है? कोई-न-कोई तरीक़ा निकाल ही लेंगे, जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

दास— [शान्त भावसे]—बात तो तुम ठीक कहते हो। ज़रा अपने किसी आदमीको टेलीफ़ोन करके पता तो करो कि आख़िर हुआ क्या है?

[केशवलाल टेलीफ़ोनका नम्बर घुमाता है। इतनेमें एक पुलिसका अफ़सर अन्दर आता है। उसके पीछे-पीछे बैरा है। केशवलाल घबरा जाता है और टेलीफ़ोन रख देता है।]

पुलिस-अफ०—बिना आज्ञाके अंदर चले आनेकी क्षमा चाहता हूँ। परन्तु कर्त्तव्य कर्त्तव्य ही है; उसकी अवज्ञा तो नहीं कर सकता, चाहे आपको कष्ट ही देना पड़े। मुझे आदेश मिला है कि आप दोनोंको गिरफ़्तार कर लिया जाय।

केशव. दास—गिरफ़्तार? गिरफ़्तार? किस लिए।

पुलिस-अफ०—आप जानते ही हैं किस लिए।

दास— नहीं तो।

पुलिस-अफ०—जो बातें आप दोनों अभी कर रहे थे, मैंने खिड़कीकी आड़में से सब सुन ली हैं। अब हमें इस बातका प्रमाण मिल गया है कि आप घूस ले-देकर क्या-क्या उपद्रव रचते रहे हैं। सरकारकी कितनी हानि हुई है आपके हाथों?

[दास और केशवलाल अचंभितसे उसकी ओर देखते रह जाते हैं]

केशवलाल— [कुछ साहस बटोरकर]—इन बातोंमें हम नहीं आते। आखिर हम बच्चे तो हैं नहीं। इस तरह सुनी-सुनाई बातों पर भी कभी कोई पकड़ा जाता है? तुम्हारे पास सबूत क्या है?

पुलिस-अफ०— सबूत बहुत है । एक तो यह सामने खड़ा है—चरा । यह तो हमारा अपना आदमी है । पिछले छः-सात दिनोंमें इसने सब-कुछ देखभाल लिया है । कचहरीमें गवाहीके लिए इसे ही पेश किया जायगा ।

केशवलाल— क्या गवाही देगा यह ?

पुलिस-अफ०—यह तो जजके सामने देखा जायगा । अभी तो आप कृपा करके मेरे साथ चलिए । आप पढ़े-लिखे आदमी हैं । आपको इसकी [हथकड़ी दिखाकर] तो जरूरत नहीं । चलिए मेरे साथ, बाहर मोटर खड़ी है ।

केशवलाल— ऐसी बात है, तो हम भी देख लेंगे ।

दास— मुझे तुम गिरफ्तार नहीं कर सकते, क्योंकि मैं सरकारी अफ्सर हूँ और मैं अपना काम कर रहा हूँ । मेरा पहला कर्त्तव्य है कि पुलके खम्भोंमें जो दरारें आई हैं, जाकर उनका निरीक्षण करूँ । मैं कहीं भागा तो नहीं जा रहा हूँ ।

पुलिस-अफ०—पुलकी चिन्ता न कीजिए । उसकी मरम्मतकी आवश्यकता नहीं है । वह टेलीफ़ोन तो झूठा था, सरासर । एक मजाक था—यह देखनेके लिए कि आपपर क्या असर होता है उसका !

केशवलाल— [बनावटी हँसी हँसते हुए]—वाह, भई वाह ! कमाल किया आपने तो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ! अरे दोस्त, हमें तो पहलेसे ही मालूम था कि आप मजाक कर रहे हैं । तो क्या आप समझते हैं कि हम सच मान गये थे ?

पुलिस-अफ०—जैसे भी हो, आप चलिए मेरे साथ ।

केशवलाल— सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब, आप दुनियादार हैं, सब समझते हैं । माना कि हम फ़रिश्ते नहीं, पर आप भी तो कोई ऐसे कट्टर धर्मात्मा नहीं । आओ बैठो, थोड़ी ह्विस्की पियो, साथ-साथ बातें भी होंगी । बताओ क्या चाहिए आपको ? [बटुआ निकालता है]

पुलिस-अफ०—नहीं साहब, इन बातोंको छोड़िए। मामला बहुत दूर तक पहुँच चुका है। अब न मेरे बसकी बात है, न आपके...

दास— लेकिन मैं तो ड्यूटी पर जा रहा हूँ।

पुलिस-अफ०—[हथकड़ी निकालकर]—आप चलेंगे या मुझे इसके लिए मजबूर करेंगे ?

[दास और केशवलाल उठकर उसके साथ-साथ बाहरकी ओर जाते हैं]

बैरा— [केशवलालसे]—हुजूर, मेरी दस दिनकी तनख्वाह तो देते जाइए !

[केशवलाल उसको मुक्का दिखाता हुआ बाहर जाता है। उनके चले जानेके बाद बैरा अपने आपको सारी स्थितिका मालिक समझता है। ह्विस्कीकी बोतल उठाकर लाता है। कुछ निकालकर मजेमें पीता है। पर्दा गिरता है।]

प्रोफ़ेसर साहब

•

प्रोफ़ेसर साहब

[स्थान : कालेजके अध्यापकोंका कमरा। चारों ओर दीवारोंपर तस्वीरें टँगी हैं—कुछ भूतपूर्व प्रिंसिपलोंकी और कुछ फुटबाल, क्रिकेट, हाकी आदिके विजेता खिलाड़ियोंकी। कमरेके बीचमें एक बड़ी-सी मेज है। उसके चारों ओर कुर्सियां पड़ी हैं। एक-दो छोटी मेजें और भी हैं, जिनपर अध्यापकोंके सुभीतेके लिए टेबुल-लैम्प रखे हैं। एक ओर दीवार पर कुछ काले गाउन टँगे दिखाई देते हैं। बीचवाली मेजपर पांव पसारे प्रोफ़ेसर सेठ बड़े आरामसे सो रहे हैं। उनके खर्राटोंकी ध्वनिसे कमरा गूँज रहा है। इसी समय कालेजकी घण्टी बजती है। बाहर क्लासोंके छूटने तथा लड़के-लड़कियोंकी चहल-पहलका शोर होता है। रमेशचन्द्र अन्दर आता है और प्रोफ़ेसर सेठको सोया हुआ पाकर दबे पाँव एक ओर मेजके पास कुर्सीपर बैठ जाता है। सहसा उसके हाथसे किताब गिर पड़ती है। रमेश लज्जित-सा पीछे मुड़कर प्रोफ़ेसर सेठकी ओर देखता है। प्रोफ़ेसर सेठ अँगड़ाई लेते हैं।]

रमेश— क्षमा कीजिएगा...

सेठ— नहीं, कोई बात नहीं। काफ़ी सो लिया। क्या बजा होगा ?

रमेश— अभी-अभी तीसरा घण्टा शुरू हुआ है।

सेठ— हूँ ! अरे, तब तो बहुत सोया।

रमेश— क्या अब कोई क्लास है आपका ?

सेठ— क्या मुसीबत है ! पहले घण्टेमें बी० ए० की 'इण्डियन हिस्ट्री' थी, दूसरे घण्टेमें एम० ए० फ़ाइनलवालोंकी और अब है 'आनर्स' की ! पर गोली मारिए, मैं तो नहीं लूँगा आज कोई भी क्लास !

रमेश— आपकी तबीयत तो ठीक है न ?

सेठ— तबीयत बेचारी क्या करे ? जो शनिवार शामके छः बजेसे ब्रिज खेलने बैठे हैं, आज सवेरे आठ बजे छोड़ा ! किन्तु और करता भी क्या ? रजिस्ट्रार और डीन दोनों मिलकर आ धमके और उनके साथ था बंबईका प्रोफेसर पटेल भी...

रमेश— वही न, जो परीक्षक नियुक्त होकर आये हैं ?

सेठ— बिल्कुल वही। ब्रिजका बहुत शौक़ीन है। ब्रिज न खेले, तो उसे रोटी ही हजम नहीं होती ! रातभर खेलता रहता है।

रमेश— तो फिर काम किस समय करता होगा ?

सेठ— काम-वाम तो ऐसे ही चलता है। जानते हो, लड़के बहुत पढ़कर खुश नहीं होते और हम बहुत पढ़ाकर खुश नहीं होते ! तो फिर बस, मियाँ-बीवी राजी, तो क्या करेगा काज़ी ?

रमेश— परन्तु एम० ए० की परीक्षा तो सिरपर आ गई है। आखिर लड़के पास कैसे होंगे ?

सेठ— तुम चिन्ता न करो। जानते हो, परीक्षा लेनेवाले कौन हैं ? यही पटेल तो आयेंगे न फिर। ये अगर नहीं आये, तो नागपुरसे देसाईको बुलायेंगे और उसे भी अवकाश न हुआ, तो लखनऊसे लालको बुला लेंगे। सब अपने ही तो हैं। यदि मैं उनके शिष्योंको पास कर सकता हूँ, तो क्या वे हमारे छात्रोंको नहीं करेंगे ?

रमेश— [अचम्भित-सा]—अच्छा ! मै नहीं समझता था कि प्रोफ़ेसरोंमें भी परस्पर ऐसा भाईचारा होता है।

सेठ— तुम अभी-अभी विदेशसे आये हो। तुम क्या जानो हमारे रस्मो-रिवाज ? हाँ, धीरे-धीरे तुम्हें सब-कुछ पता चल जायगा। [उठता है] चलूँ जरा प्रिंसिपलसे मिल आऊँ। कई दिनोंसे कोई गप-शप नहीं हुई है।

[खूँटीपरसे अपना गाउन उतारकर पहनता है। फिर जेबमेंसे चश्मा निकालकर लगाता है और दो-चार किताबें बग़लमें दबाकर चल देता है। रमेश अपने काममें लग जाता है। कोई दरवाज़ा खटखटाता है।]

रमेश— अन्दर आ जाओ।

[दो विद्यार्थी आते हैं]

पहला— क्या प्रोफ़ेसर सेठ नहीं आये आज ?

रमेश— वे प्रिंसिपलसे मिलने गये हैं।

दूसरा— तो क्या वे आज क्लास नहीं लेंगे ?

रमेश— मेरे विचारमें तो शायद नहीं।

[दोनों विद्यार्थी 'धन्यवाद' कहकर हँसते हुए बाहर चले जाते हैं। रमेश फिर किताब पढ़ने लगता है। दरवाजेपर हल्की-सी खटखट होती है।]

रमेश— आ जाओ।

[एक सुन्दर युवती प्रवेश करती है।]

युवती— नमस्कार।

रमेश— नमस्कार, मीरा। कहो, क्या बात है ?

मीरा— आपने जो किताब बतलाई थी न देखनेको, वह मुझे लाइब्रेरी से नहीं मिल रही। इसी कारण मैंने अपना निबन्ध भी नहीं लिखा। मैंने सोचा कि क्लास शुरू होनेसे पहले ही आपको बता दूँ।

रमेश— कौन-सी किताब ?

मीरा— वही 'ब्रिटिश हिस्ट्री' की।

रमेश— [पास रखी किताबोंमेंसे एक निकालकर देते हुए] तुम इस किताबको पढ़ लो। इसमें कुछ मिल जायगा।

मीरा— [किताब लेकर] आपको कब तक चाहिए यह ?

रमेश— दो-तीन दिनमें लौटा देना।

मीरा— अच्छा। बहुत-बहुत धन्यवाद।

रमेश— और कुछ ?

मीरा— जी, हाँ। एक बात समझमें नहीं आई। विलायतके बादशाह हेनरी अष्टमकी पाँचवीं बीवीका जो तलाक़ हुआ, उसकी राजनीतिक प्रतिक्रिया क्या हुई थी ?

रमेश— तुम्हारा प्रश्न रुचिकर है। मैं इस विषय पर एक-दो दिन तक क्लासमें ही बातचीत करनेवाला हूँ।

मीरा— जी, अच्छा।

रमेश— और कुछ ?

मीरा— जी नही। बहुत कृपा है आपकी।

[जाती है। डाक्टर नरेन्द्र आता है।]

नरेन्द्र— [आँखें मटकाकर] अरे वाहरे छुपे रुस्तम! क्यों, क्या बात है ?

रमेश— कैसी बात ? क्या हुआ ?

नरेन्द्र— यह स्टाफ़-रूममें कैसी प्रेम-लीला रचाते हो ?

रमेश— तुम भी क्या बात करते हो ? अरे, यह तो मेरे क्लासकी एक छात्रा है। कुछ पूछने चली आई थी।

नरेन्द्र— [मुसकराकर] वह कुछ पूछने आई थी, या तुम कुछ पूछ रहे थे और वह जवाब दे रही थी ?

[दोनों हँसते हैं]

नरेन्द्र— ज़रा बचके रहना। मलहोत्राका क़िस्सा मालूम है न ? वह भी लेबोरेटरीमें एक छात्राको ऐसे ही सवालोंके जवाब बता रहा था! [हँसता है] फिर यह तो प्रिंसिपलकी बेटी ठहरी!

रमेश— कौन ?

नरेन्द्र— अब बनते हो ?

रमेश— मैं बन रहा हूँ या आप बना रहे हैं मुझे ?

नरेन्द्र— बना नहीं रहा, बता रहा हूँ कि यह सुन्दर युवती प्रिंसिपल साहबकी बेटी है ।

रमेश— अच्छा । [फिर पढ़ने लगता है] जरा यह अध्याय समाप्त कर लूँ ।

नरेन्द्र— [सहृदयतासे] देखो रमेश भैया, एक बात समझ लो । बहुत मत पढ़ा करो, आँखें कमजोर हो जायँगी !

[रमेश मुसकराता है]

नहीं मैं हँसी-मजाक नहीं कर रहा हूँ । सच कहता हूँ कि इस तरह मन मारकर परिश्रम करनेसे कुछ लाभ न होगा । मुझे यहाँ पढ़ाते दस साल होनेको आये । मेरे अनुभवसे कुछ सीखो ।

रमेश— [हँसता है और किताब बन्द कर देता है] कहिए ।

नरेन्द्र— पहले-पहल मैं भी इसी तरह लगनसे काम किया करता था । एक विषयपर दुनिया-भरकी पुस्तकोंका अनुसन्धान करके अपना लेक्चर तैयार करना, विद्यार्थियोंको जब-तब लेकर समझाने बैठ जाना...। परन्तु उससे कुछ नहीं बना । सालाना पाँच-दस रुपये तरक्की मिल जाती थी, बस । हारकर मैंने भी खेल-कूदकी ओर ध्यान देना शुरू किया । हाकी थोड़ी-बहुत जानता था, अतः उसीकी देख-भालका भार अपने ऊपर ले लिया । उसके बाद तो भगवान् की कृपा रही । इसी हाकीकी टीमकी बदौलत देश-विदेश घूम आया और जब हमारी टीम अंतर्युनिवर्सिटी-टूर्नामेंटमें जीत गई, तो मैं भी रीडर बन गया ।

रमेश— [उत्तेजित होकर] तो हम यहाँ करने क्या आते हैं ? लड़कोंको हाकी खिलाने, ब्रिज सिखाने तथा परीक्षामें जैसे-तैसे पास करानेके लिए ही न ? क्या हमारा इन तरुण-

तरुणियोंकी ओर यही दायित्व है ? कमालकी बातें करते हैं आप ! जब तक हम स्वयं शिक्षाको गम्भीरतापूर्वक नहीं लेंगे, इन युवकोंको क्या सिखायेंगे ?

नरेन्द्र— [हँसकर] अरे दोस्त, इतने उत्तेजित होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। शुरू-शुरूमें सभीके मनमें उत्साह होता है, दलीलें होती हैं। सोचते हैं सारी व्यवस्था ही बदल देंगे। परन्तु यह उत्साह जल्दी ही ठंडा पड़ जाता है। तुम अभी युनिवर्सिटी-जीवनके कई क्षेत्रोंसे अनभिज्ञ हो, इसलिए इन चीज़ोंको नहीं समझते। मेरी बात सुनो—इस तरह केवल पढ़ने-लिखनेसे तुम्हारा कुछ भी बननेका नहीं।

रमेश— [नरेन्द्रकी बात काटकर] – पर मुझसे खाली ढोंग तो नहीं रचा जायगा।

नरेन्द्र— ढोंग रचनेकी आवश्यकता क्या है ? चुपचाप इस लड़कीसे शादी कर लो, बस...।

रमेश— किस लड़कीसे ?

नरेन्द्र— अरे वही, जो अभी तुमसे मिलकर गई है।

रमेश— [चिढ़कर] मैंने कहा वह मेरी क्लासकी एक छात्रा है।

नरेन्द्र— पर गुस्से क्यों होते हो ? मैं जानता हूँ कि वह बी० ए० में पढ़ती है। यह भी जानता हूँ कि वह प्रिंसिपलकी लड़की है और उसके हाव-भाव तथा आँखोंसे यह भी भाँप गया हूँ कि वह तुमसे प्रेम करती है ! तभी तो कहता हूँ कि यह संबन्ध पक्का कर डालो ! तुम तो सौभाग्यवान हो, जो सुन्दर लड़की मिल रही है। हममेंसे कई ऐसे भी हैं, जिन्हें ऐसी लड़कियोंसे ब्याह करना पड़ा है, जो देखनेमें बहुत साधारण हैं। पर केवल इसलिए ब्याह करना पड़ा कि उनके पिता या तो रजिस्ट्रार या वाइस-चान्सलर या सेनेटके सदस्य या कोई अन्य बड़े आदमी थे !

रमेश— जाइए, मुझे उल्लू बनानेकी चेष्टा मत कीजिए। क्या आपका कोई लेक्चर-वेक्चर नहीं है आज ?

नरेन्द्र— लेक्चरकी भी सोच लेते हैं, पहले यह बात तो पूरी हो ले।

रमेश— [व्यंगसे] जी, माफ़ कीजिए। मुझे अभी शादी नहीं करनी है।

नरेन्द्र— पागल मत बनो। आखिर शादी तो तुम करोगे ही—आज नहीं, दो साल बाद सही। इससे अच्छा तो यही है कि मेरी बात मान लो और प्रिंसिपल साहबके जामाता बन जाओ। फिर देखो, कैसे सफलताकी सीढ़ीपर दौड़ते हुए चढ़ते हो—आज लेक्चरार, कल रीडर, परसों प्रोफ़ेसर और फिर युनिवर्सिटियोंके परीक्षक बन जाओगे! और शायद यूनेस्कोसे छात्रवृत्ति पाकर अमरीकाकी सैर भी कर सकोगे!

रमेश— और शेखचिल्लीके अण्डे कब फूटेंगे ?

नरेन्द्र— [खिन्न होकर] तुम तो इसे मज़ाक समझ रहे हो।

रमेश— केवल मज़ाक नहीं, उपहास भी!

नरेन्द्र— [गम्भीरतासे] नहीं रमेश, मैं भला तुम्हारा उपहास क्यों करने लगा? मैं तो तुम्हारे भलेकी बात कह रहा हूँ। तुम्हें यूँ काम करते देख मुझे कष्ट होता है। क्या तुम इस बातसे सहमत नहीं कि आजकल ज़माना वसीले और जान-पहचानका है, रिश्तेदारीका है।

रमेश— सो तो मानता हूँ।

नरेन्द्र— तो फिर दोस्त, मेरे सुझावपर ध्यान दो। हाँ, यदि वाइस-चान्सलरकी लड़कीपर नज़र है या दिल्लीमें शिक्षा-मंत्रालयमें कोई है, तो और बात है। नहीं तो यह अवसर अच्छा है।

[एक विद्यार्थी, अति व्याकुल-सा हाँफता हुआ अन्दर आता है]

विद्यार्थी— डाक्टर शास्त्री हैं ?

रमेश— नहीं।

विद्यार्थी— बता सकते हैं आप कि इस समय वे कहाँ मिलेंगे ?

रमेश— मैंने तो उन्हें सुबहसे ही नहीं देखा ।

विद्यार्थी— [निराश होकर] अच्छा क्षमा कीजिएगा, आपको नाहक़ कष्ट दिया । [जाता है]

नरेन्द्र— ज़रूरी काम क्या होगा, परचे देखनेको मिले होंगे इसे, वही लौटाने होंगे ।

रमेश— लेकिन यह तो स्वयं ही विद्यार्थी है ।

नरेन्द्र— तो क्या हुआ ? एम० ए० में पढ़ता है, बी० ए० या एफ० ए० के परचे तो देख ही सकता है ।

रमेश— डाक्टर शास्त्रीने दिये होंगे ?

नरेन्द्र— हाँ, मेरा विचार तो यही है । सुना है इस साल शास्त्री साहबने कुल मिलाकर कोई दो-ढाई हज़ार परचे देखनेको लिये हैं । सब विश्वविद्यालयोंकी परीक्षाओंका समय तो लगभग एक ही होता है, इसीसे परचे सब इकट्ठे ही आ गये होंगे । बीस-पचीस दिनमें स्वयं तो कहाँ देख पाता, लड़कोंमें बाँट दिये होंगे । बस !

रमेश— यह भी खूब रही । पच्चीस सौ परचे और पच्चीस दिनमें । ठीक तरहसे देखो, तो रोज़ाना बीस-पचीससे अधिक कोई नहीं देख सकता ।

नरेन्द्र— मेरा तो दसपर ही सिर चकराने लगता है ।

रमेश— मैं सोचता हूँ कि बेचारे विद्यार्थियोंका क्या हाल होता होगा, जो दिन-रात सिर मारकर परिश्रम करते हैं । फिर इन लड़कोंके मनमें प्रोफ़ेसरोंके लिए कितना आदर-सम्मान रह जायगा ?

नरेन्द्र— क्यों, वे तो खुश होते हैं कि प्रोफ़ेसर साहबने उन्हें अपने विश्वासका पात्र समझा ।

रमेश— प्रोफ़ेसरके विश्वासपात्र वे भले ही बन जायें, परन्तु आजकी शिक्षा-प्रणालीके लिए उनके मनमें क्या श्रद्धा या आदर हो सकता है ?

नरेन्द्र— ऐसी श्रद्धा भी क्या, जिससे उठ जानेका अब भय हो ! लड़कोंके मजाक नहीं सुने कभी ? कहते हैं परीक्षा तो एक लाटरी है, जिसमें भाग्यका निर्णय होता है। परीक्षक साहबके मूडपर ही तो सब-कुछ निर्भर करता है। प्रसन्न होंगे, तो पास कर देंगे, अप्रसन्न हुए तो फ़ेल !

रमेश— भई कमालके लोग हैं ; मेरी तो बुद्धि ही...

[शास्त्री साहब पान चबाते हुए अन्दर आते हैं]

शास्त्री— कहो, क्या ख़बर है ?

नरेन्द्र— आपको एक लड़का ढूँढ़ रहा था अभी।

शास्त्री— कौन-सा लड़का ?

नरेन्द्र— एम० ए० का छात्र है, नाम तो नहीं याद आ रहा इस समय...

शास्त्री— शक्ल-सूरत कैसी है ?

नरेन्द्र— वही लंबा-सा, दुबला-पतला, जो काली ऐनक पहने रहता है। बहुत घबराया हुआ-सा नजर आता था।

शास्त्री— अखिल तो नहीं ?

नरेन्द्र— हाँ, वही।

शास्त्री— आप कहते हैं घबराया हुआ था ?

रमेश— जी।

शास्त्री— कुछ बताया नहीं, क्या काम था ?

नरेन्द्र— कहा तो कुछ नहीं, परन्तु बहुत व्याकुल दिखाई देता था।

[शास्त्री कुछ सोचने लगता है। इतनेमें अखिलेश झाँककर भीतर देखता है।]

नरेन्द्र— यह लीजिए, आ गया।

[अखिलेश आता है]

शास्त्री— क्यों, क्या हुआ है ?

अखिलेश— [गिड़गिड़ाते हुए] क्षमा कीजिए प्रोफ़ेसर साहब, मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। कैसे समझाऊँ, आप क्या कहेंगे...

शास्त्री— [क्रुद्ध होकर] कुछ कहोगे भी सही...

अखिलेश— कल रात मैंने पचास परचे देखकर रखे थे। आज सवेरे उन सबको बंडलमें बाँधकर आपको लौटानेके लिए ला रहा था। बसमें बड़ी भीड़ थी। जैसे ही मैं उतरा कि किसीने मेरी बग़लमेंसे बण्डलका बण्डल छीन लिया। मैंने बहुत शोर मचाया, किन्तु चोरका कुछ पता नहीं चला।

शास्त्री— तुमने बस-कण्डक्टरसे क्यों नहीं कहा ?

अखिलेश— बहुत कहा, परन्तु वे लोग सुनते कहाँ हैं ? कहने लगे, यदि हम हर एक सवारीके झगड़ोंका निबटारा करने लगें, तो बस चल ही न पाय।

शास्त्री— [तमतमाते हुए] हूँ ! तो तुमने किया क्या ?

अखिलेश— पुलिसमें रिपोर्ट लिखवा दी है, साहब।

शास्त्री— [गरजकर] पुलिसमें रिपोर्ट ! उल्लू कहींका। मुझे क्यों नहीं बताया ? क्या मैं मर गया था, जो थाने जाकर रिपोर्ट लिखवा आये ?

अखिलेश— [गिड़गिड़ाकर] पहले आपको ढूँढ़ता हुआ यहीं आया था, प्रोफ़ेसर साहब। पहले घंटेमें आप नहीं थे, सोचा दूसरेमें आते होंगे। दूसरेमें भी आपको नहीं देखा, तब भागा-भागा आपके घर गया। वहाँ भी आप नहीं मिले। मैंने सोचा, जितनी देर होती जायगी, मामला और भी चौपट होता जायगा, इसीलिए पुलिसको ख़बर कर दी।

शास्त्री— [तुनककर] पर पुलिसको क्यों ? जानते नहीं, वहाँ क्या होता है ? तुम्हारी अक़्ल कहाँ है ?

अखिलेश— [रुआँसा होकर] तो मैं क्या करता ?
शास्त्री— [क्रोधित होकर] करता अपना सिर। मैं नहीं जानता था कि तुम इतने गधे हो, नहीं तो कभी तुम्हें वजीफ़ा न दिलवाता। अब भी बंद करवा सकता हूँ। बेकार ही बातका बतंगड़ बना दिया। चलो, अब मेरे साथ। कौन-से थानेमें रिपोर्ट की है ?
अखिलेश— [धीरेसे] माल रोडके थानेमें।
शास्त्री— वहाँका थानेदार कौन है ?

[बड़बड़ाता हुआ अखिलेशको साथ लिये कमरेके बाहर चला जाता है।]

रमेश— वैसे तो अच्छा ही हुआ। शास्त्री साहब फँसें, तो ज़रा स्वाद आ जाय।
नरेन्द्र— लेकिन फँसेगा नहीं, बड़ा घाघ है। सबके साथ बनाकर रखी है। पुलिस-थानेमें भी कोई-न-कोई अपना शिष्य ही निकल आयगा और प्रोफ़ेसर साहब छा जायँगे उसपर। बस, फिर क्या, रपट-वपट शीघ्र ही खारिज करवा देंगे !
रमेश— लेकिन परचे तो अब मिलनेसे रहे।
नरेन्द्र— ऐसी बातें तो होती ही रहती हैं। बहुत हुआ, तो दो-चार दिन अखबारोंमें ले-दे होगी। फिर मामला ठप्प हो जायगा।
रमेश— और जो अखिलेशकी छात्रवृत्ति बंद करवा देनेकी धमकी देता था...
नरेन्द्र— क्या जाने क्या होगा उसका ?
रमेश— अगर उसकी छात्रवृत्ति बंद हो गई, तो मैं प्रिंसिपलको रिपोर्ट कर दूँगा।
नरेन्द्र— न, न ! तुम काहेको इस झगड़ेमें पड़ोगे ?
रमेश— परन्तु यह तो घोर अन्याय होगा।

नरेन्द्र— न्याय-अन्यायकी अपनी-अपनी व्याख्या है। जिसे तुम अन्याय समझते हो, सम्भव है,वह उसकी दृष्टिमें न्याय हो। और फिर तुम्हारा इस मामलेमें पड़ना उचित न होगा।

रमेश— यही हाल है, तो मैं कालेजकी नौकरी छोड़ कोई और काम कर लूँगा। दाल-रोटी ही तो चाहिए, सो कहीं-न-कहीं मिल ही जायगी। पर ऐसे वातावरणमें तो मेरा दम घुटता है।

नरेन्द्र— अरे मियाँ, जहाँ भी जाओगे, वातावरण तो आजकल ऐसा ही मिलेगा। ज़मानेकी हवा ही बिगड़ी हुई है। सरकारी नौकरी क्या, व्यापार क्या, कारखाने क्या, सब जगह यही हाल है। दयानतदारीको कोई नहीं पूछता।

[कालेजकी घण्टी बजती है]

यह लो, जाओ, अब अपना क्लास लो। भूल जाओ इन बातोंको। सब ओर देख-सुनकर यही मानना पड़ता है कि नौकरी फिर भी अच्छी है!

रमेश— [किताबें उठाकर] अच्छा भाई, जाता हूँ।

[दरवाजेकी ओर बढ़ता है। सामनेसे एक लड़का परचोंका बंडल उठाये आता है।]

लड़का— नमस्कार, प्रोफ़ेसर साहब।

रमेश— क्या है?

लड़का— क्षमा कीजिएगा, डाक्टर शास्त्रीको तो नहीं देखा आपने?

रमेश— [व्यंग्यपूर्ण मुसकराहट सहित] डाक्टर शास्त्री? वे तो थाने गये हैं...माल रोडके थानेमें मिलेंगे तुम्हें!

[जाता है। लड़का हक्का-बक्का इधर-उधर देखता है। पर्दा गिरता है।]

●

घर आई लक्ष्मी

•

घर आई लक्ष्मी

[मेहता साहबके बैठनेका कमरा। बढ़िया हरे रंगका सोफ़ा-सेट, लाल, फूलदार ईरानी क़ालीन, गहरे ब्राउन रंगका रेडियोग्राम, दीवारों पर दो चार पेंटिंग्स, तथा गांधीजीका चित्र। हर चीज़ अपनी-अपनी जगह सजी हुई। एक कोनेमें काम करनेकी बड़ी मेज़ रखी है जिस पर टेलीफ़ोन, रीडिंग-लैम्प, कुछ फ़ाइलें इत्यादि हैं। कमरेको देख कर कुछ ऐसा लगता है, मानो सारी चीज़ें यथा तथा इकट्ठी की गयी हैं। मेहता साहब बैठे फ़ाइलें देख रहे हैं। तभी बाहरके दरवाज़ेकी घण्टीकी आवाज़ आती है। मेहता साहब ज़रा चौंक कर सिर उठाते हैं—]

[भीमसेन आता है]

भीमसेन— साहब, आपसे कोई मिलना चाहता है।

मेहता— इस समय? कौन है?

भीमसेन— नाम तो बताया नहीं।

मेहता— तुमने पूछा भी था?

भीमसेन— जी हाँ, कहने लगे, नाम बतानेकी ज़रूरत नहीं।

मेहता— [कुछ रहस्यमय भाव से] पहले देखा है उसे यहाँ कभी?

भीमसेन— याद तो नही पड़ता।

मेहता— कपड़े कैसे पहने हैं?

भीमसेन— अँधेरेमें खड़े थे—कुछ ठीक दिखाई नहीं दिया। शायद खद्दरकी टोपी तो थी।

मेहता— [विस्मित-सा] खद्दरकी टोपी! तुमने क्या कहा, मैं घरमें हूँ?

भीमसेन— मैंने कहा, देखता हूँ।

मेहता— ठीक किया [स्वयं उठकर खिड़कीकी ओर से बाहर झाँकता है और उँगलीसे संकेत करता है ।]

भीमसेन— [पास जाकर झाँकते हुए] जी मालूम तो वही होता है, मगर पहले तो एक आदमी था, अब दो हो गये ।

मेहता— क्या यह इसी टैक्सीसे उतरा ? [फिर आप ही] पर तुम क्या जानो—तुमने तो दरवाज़े पर ही देखा ।[ज़रा सोचकर] अच्छा बुलाओ । [भीमसेन दरवाज़े तक पहुँचता है] और देखो, ज़रा मेम साहबको इधर भेजते जाना ।

[नौकर जाता है—मेम साहब आती हैं]

शोभा— क्यों अभी काम ख़त्म नहीं हुआ ? क्या मुसीबत है, जबसे यह नया पद सम्हाला है कितना काम बढ़ गया है ।

मेहता— हाँ, अब देखो न, यह नयी क्या बला आयी है ! कोई बाहर खड़ा है, मिलना चाहता है, लेकिन नाम नहीं बताता । [सिर पर हाथ रखकर] लगता है जैसे पहले कहीं इसे देखा भी है ! तुम ज़रा उससे कह न दो, मेरी तबीयत अच्छी नहीं है—कल आफ़िसमें मिल ले ।

शोभा— इस समय आया कुछ जरूरी कामसे ही होगा । ख़ैर, देखती हूँ ।

[जाती है, मेहता बेचैन-सा कमरेमें चक्कर लगाता है, मानो आगन्तुक के बारेमें उसे कुछ अन्तर्ज्ञान सा-हो रहा हो—फिर काग़ज़ इकट्ठे करके मेज़की दराज़ोंमें डालता है—शोभा लौट कर आती है]

शोभा— वह साहब कहते हैं कि जिस कामसे आपके पास आये हैं उसका दफ़्तरसे कोई सम्बन्ध नहीं । बस दो मिनटके लिए मिलना चाहते हैं ।

मेहता— [उसी रहस्यमय भावसे] क्या अकेला है ?

शोभा— हाँ ।

मेहता— अच्छा आने दो, मगर इसके बाद कोई भी आये तो कह दो कि मैं नहीं मिल सकता।

शोभा— बहुत अच्छा।

[जाती है। एक अधेड़ व्यक्ति प्रवेश करता है। चाल-ढाल-कपड़ों आदिसे लगता है कोई आधुनिक ढंगका अच्छा, खाता-पीता 'बिजनेस मैन' है]

मेहता— कहिए?

छोटूभाई— देखिए साहब, मैं बड़ा सीधा सादा आदमी हूँ। मुझे छल-बल नहीं आता। आपसे भी सीधी बात करता हूँ।

मेहता— कहिए, कहिए।

छोटूभाई— मैं 'मोहनभाई छोटूभाई' फ़र्मका एक हिस्सेदार हूँ। हमारा एक 'केस' आपके पास आया है। मैं उसीके बारेमें आपकी राय लेना चाहता हूँ।

मेहता— [जरा तनकर) उसमें राय क्या लेना है आपको? जैसे और मामलोंका निर्णय किया जाता है वैसे ही, बारी आने पर इसका भी फ़ैसला हो जायगा [छोटूभाईकी ओर जरा तीखी नजर तथा गम्भीर दृष्टिसे देखते हुए] हूँ!! तो आप मुझे प्रभावित करने आये हैं? निकल जाइए यहाँ से अभी... एकदम! [छोटूभाई कुछ कहनेको उद्यत होता है, परन्तु मेहता साहब मौक़ा ही नहीं देते] क्या समझते हैं आप, मैं अपना धर्म बेच डालूँगा? आपको मालूम होना चाहिए सरकारने मुझे एक भारी उत्तरदायित्व सौंप रखा है।

छोटूभाई— क्षमा कीजिए, मुझे पहले ही बता देना चाहिए था आपको कि मुझे सत्यप्रकाशजीने आपके पास भेजा है और उन्होंने यह भी कह देनेको कहा था कि [धीरेसे] 'खान साहब पीपल के पेड़के नीचे सो रहे हैं [मेहताका चेहरा खिल उठता है जैसे किसी गुप्त भाषाके समझ जाने पर संकोच दूर हो गया हो]

मेहता— अरे वाह, आपने भी कमाल किया ! पहले क्यों नहीं कहा ? सत्यप्रकाश तो हमारे मित्र हैं । [अपने पास सोफ़े पर बैठने का इशारा करते हुए] आइए न, यहाँ बैठिए । [सिगरेटका डिब्बा छोटूभाईके सामने रखते हैं] क्या पीजिएगा ? थोड़ी-सी ह्विस्की मँगवाऊँ ?

छोटूभाई— [सिगरेट लेते हुए] धन्यवाद, नहीं इस समय ह्विस्की नहीं, फिर कभी सही । अब तो मिलते ही रहेंगे ।

मेहता— हाँ, हाँ; क्यों नहीं । मैं जानता हूँ सारा केस । अपनी ओरसे पूरा प्रयत्न करूँगा । किन्तु आप तो जानते हैं मुझे इसके लिए बहुत-कुछ करना होगा । हाँ, कई लोगोंसे मिलना होगा ! ऊपरसे नीचे तक पूरा-पूरा प्रबन्ध करना पड़ेगा । आपके मित्रने आपको बताया ही होगा ।

छोटूभाई— जी हाँ, उसके लिए मैं यह ५००० का चेक लाया हूँ आपके भाईके नाम ।

मेहता— नहीं साहब, चेकसे काम नहीं चलेगा, कैश चाहिए ।

छोटूभाई— [जेबसे एक मोटा-सा लिफ़ाफ़ा निकाल कर] वह भी हाज़िर है ।

मेहता— [मुसकरा कर] क्षमा कीजिए, ऐसे मामलेमें तो नक़द चाँदी या सोना ही...,

छोटूभाई— वह भी है, अभी लाया ।

[जाता है । शोभा मुसकराती हुई आती है]

शोभा— [सिर हिलाकर] कितने हैं ?

मेहता— क्या ?

शोभा— मैंने दरवाजेकी ओटसे सब सुन लिया है । अब तो मुझे कंगन ले ही देने पड़ेंगे । कहो, कल चलोगे न बाज़ार ?

मेहता— ज़रा, धीरज रखो; ऐसी भी क्या जल्दी !

शोभा— देखो, ऐसा पैसा घरमें नहीं रखना चाहिए। जितनी जल्दी हो...

मेहता— [बाहर आहट पाकर] अच्छा, अभी तो अन्दर जाओ, वह आ रहा है।

[शोभा जाती है—छोटूभाई रुपयोंकी थैली लाकर मेज पर रख देते हैं]

छोटूभाई— तो, अब आज्ञा है मुझे?

मेहता— [उठकर उसके साथ दरवाजे तक जाते हुए] मैं आपको बता दूंगा मामलेका हाल। भगवान्‌ने चाहा तो सब ठीक हो जायगा [छोटूभाईके मनका भाव समझ कर] नहीं मुझ टेलीफ़ोन करनेकी जरूरत नहीं। कोई विशेष काम हो तो इसी समय आ जाइये या मैं सवेरे घूमने जाता हूँ तो, कभी आप भी निकल आइए, रास्तेमें भेंट हो जायगी।

छोटूभाई— समझ गया। ऐसे ही करूँगा। अच्छा, धन्यवाद! नमस्कार!

[जाता है—शोभा आती है और सीधी रुपयोंकी थैलीके पास जाकर उसे टटोलती है, रुपयोंकी आवाज होती है—फिर, थैली खोल, दो-चार रुपये निकाल कर उन्हें बजा कर देखती है]

मेहता— धीरे, कोई सुन लेगा तो क्या सोचेगा!

[कमल आता है]

कमल— [थैलीको देख कर अचरजके साथ] मैं भी तो कहूँ, इस समय यह रुपयोंकी खनक कहाँसे आ रही है! [कुछ रुपये मुट्ठी में भरकर] पापा, अब तो मेरी मोटर-साइकिल पक्की है न?

मेहता— अरे जरा तो धीरजसे काम लो; उसे सीढ़ियोंके नीचे तो उतर लेने दो!

कमल— [रुपयोंसे खेलता हुआ] वह तो चला गया, कब का।

शोभा— हाँ सच, ऐसे भागा जैसे उसे सन्देह हो कि कहीं आप अपना मन न बदल दें।

कमल— [अचानक एक एक रुपयेको देखने लगता है] एक ही सन्के इतने इकट्ठे रुपये पहले कभी नहीं देखे थे। यह तो सबके सब ही १९१२ के मालूम होते हैं !

मेहता— [उछलकर] क्या कहा ? एक ही सन्के हैं [पास जाकर स्वयं परखता है] सबके सब ! [घबराकर] इसमें अवश्य कोई भेद है। यह तो जानबूझकर मुझे फँसानेको जाल रचा गया है। [जल्दीसे खिड़कीके पास जाकर झाँकता है मोटरके स्टार्ट होनेकी आवाज] लो वह गया...अब समझो मुसीबत आयी।

शोभा— आप व्यर्थ घबरा रहे है।

मेहता— [चिन्तित] नहीं, तुम नहीं समझतीं इन चालोंको ! ये लोग बड़े बदमाश होते है—बड़ी-बड़ी चालाकियाँ करते हैं—नोटों पर निशान लगाकर दे जाते हैं। और ये एक सालके इतने रुपये ! यह विना किसी विशेप अभिप्रायके नहीं हो सकते। अब करूँ तो क्या ! यह तो जरूर कोई जाल है। वक़्त क्या है कमल ? [बेचैनीसे चक्कर लगाता हैं]

कमल— ग्यारह बजनेको हैं।

मेहता— [अधीर होकर] फेंकूँ इन मनहूस रुपयोंको ?

शोभा— कोयलेकी बोरीमें डाल दो।

मेहता— ऊँह ? कैसी भोली बातें करती हो ! ऐसे अवसर पर पुलिसवाले ट्रंक नहीं खोलते, सीधे कोयलेकी बोरी, आटेका टीन, मैले कपड़ोंका थैला, बाथरूम ही देखते हैं।

शोभा— तो, इधर लाओ; दरियों, चद्दरोंके ट्रंकमें रख देती हूँ।

मेहता— और तलाशी ली गयी तो सब पिछला भण्डा भी फुड़वाना !

शोभा— तो घनश्यामके घर भेज दो।

मेहता— लेकर कौन जायगा ? देखते ही उसे सन्देह भी तो होगा। और कहीं हरिश्चन्द्र बन कर आप ही पुलिस को...

शोभा— ऐसा कैसे हो सकता है, आपका इतना मित्र है वह।

कमल— माँ, पिताजी ठीक कहते हैं, रुपयोंके मामलेमें दोस्त पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता।

मेहता— मुझे तो एक तरीक़ा ही सूझता है—सामने समुद्रमें फिकवा दो इन रुपयोंको।

शोभा— [बात काट कर] वाह! घर आई लक्ष्मीका ऐसा अनादर? तुम रहने दो, मैं सँभाल लूँगी।

मेहता— [चिढ़ कर] मुझे जेल भिजवाओगी?

कमल— माँ, पापाका विचार ठीक है—इन्हें फेंक ही देना चाहिए।

मेहता— कौन जायगा फेंकने?

शोभा— तुम, और कौन?

मेहता— नहीं, मैं तो पकड़ जाऊँगा—रंगे हाथों...[पसीना पोंछता है। शोभा से] तुम जाओ, टैक्सी ले लो...

शोभा— मैं कैसे जा सकती हूँ अकेली? इस समय? टैक्सी-ड्राइवर ही मार डाले तो—कमल, तुम जाओ।

कमल— मुझे तो सीधा थानेमें भेज देंगे वे! पूछेंगे, तुम्हारे पास इतने रुपये कहाँसे आये? और बस सारा भेद खुल जायगा। मैं कहता हूँ भीमसेनको भेजो।

शोभा— तुम समझते हो भीमसेन रुपये समुद्रमें फेंकेगा? ऐसा बेवकूफ़ नहीं है वह। रुपये लेकर चम्पत न हो जाये तो मेरा नाम शोभा नहीं।

मेहता— चम्पत हो जाये, यही तो हम चाहते हैं। लेकिन मुझे डर है कि वह यहीं कहीं किसी ताड़ीवालेके यहाँ पहुँच जायगा और पी-पीकर बकेगा! [माथेका पसीना पोंछता है] हे भगवान्!

शोभा— [खीझ कर] तो तुम ऐसे काम करते ही क्यों हो?

मेहता— [गुस्सेमें] तुम्हारे मुंहसे तो यह बात नहीं सोहती। तुम्हीं तो सवेरेसे शाम तक ताने दिया करती थी कि रोशनने अपना घर बना लिया, सूरजने लड़केको विलायत भेज दिया, कान्ता ने बिटियाके ब्याहमें दस हजार नक़द दिया...

[टेलीफ़ोनकी घण्टी बजती है—तीनोंके मुंह पीले पड़ जाते हैं—डरके मारे सब एक दूसरेको ओर देखते हैं]

मेहता— [शोभा से] पूछो जरा कौन है ?

शोभा— [पीछे हट कर] भई, मुझे तो लगता है डर...

मेहता— तुम उठाओ, कमल।

कमल— लेकिन पिताजी कोई ऐसी वैसी बात हुई तो मैं तो समझ भी न पाऊँगा... क्या कहूँ ?

मेहता— निकम्मे हो तुम सब [काँपते हाथोंसे टेलीफ़ोन उठाता है] हैलो... कौन है...जी नहीं, यह अस्पताल नहीं है...आपको गलत नम्बर मिला [रिसीवर रखता है—शोभा और कमल सांस लेते हैं, परन्तु मेहता साहब अब भी चिन्तित हैं।]

शोभा— मेरा तो ख्याल है आप यों ही घबरा रहे है।

मेहता— सम्भव है उन्होंने यह टेलीफ़ोन केवल यही पता करनेके लिए किया हो कि मैं घर पर हूँ या नहीं [एक नई चिन्ता जागती है—कमलसे] थैली बन्द करो और छुपा दो इस बलाको कहीं—मुझे तो लगता है कि अब पुलिस आयी कि आयी।

[सहसा कोई बाहरका दरवाजा खटखटाता है—सबके चेहरे फ़क़ पड़ जाते हैं]

मेहता— जल्दी करो देखते क्या हो। डालो इसे सोफ़ेके नीचे...देखो, सम्हालके, धीरेसे...शोर नहीं [कमरेके दरवाजेके बाहर निकल जाता है]

शोभा— [हाथ जोड़ कर] हे भगवान्, अबकी क्षमा करो—फिर ऐसा कभी न होगा !

[बाहरका दरवाजा खुलनेकी आवाज आती है—माँ-बेटे कान लगा कर सुनते हैं]

आगन्तुक—श्री नारियलवालाका फ्लैट यही है ?

मेहता— जी नहीं, ऊपर है, तीसरे तल्ले पर ।

आगन्तुक—क्षमा कीजिए,—आपको कष्ट हुआ ।

मेहता— [भर्राई आवाजमें] कोई बात नही ।

[दरवाजा बन्द होनेकी आवाज]

शोभा— [कमलसे] मैं कहती हूँ यह ऐसे ही घबरा रहे हैं ।

मेहता— [अन्दर आकर] मालूम होता है कोई सादे कपड़ोंमें सी०आई० डी० का आदमी था । नारियलवालाका बहाना लेकर आया था । यह तो वह नीचे ही पढ़ सकता था कि नारियलवाला किस नम्बरके फ्लैटमे रहता है । [आह भर कर] जाने किस मनहूस घड़ीमें उस आदमीका मुँह देखा था ? [दाँत पीसकर] कम्बख्त मिले तो नोच डालूँ ! बड़ा आया सत्यप्रकाशका नाम लेकर...! लेकिन उसे हमारी संकेत भाषाका कहाँसे पता चला ? [जरा शान्त होकर] हो सकता है मैं यों ही घबरा रहा हूँ [अपने आपको जरा तसल्ली देता है—इतनेमें फिर कोई दरवाजा खटखटाता है—मेहताके हवाश उड़ जाते हैं। शोभा से] अब तो सचमुच वही होंगे—जाओ तुम दूसरे कमरेमें...हे भगवान् [जाता है, दरवाजा खोलता है]

मेहता— [दूरसे गुस्सेमें] हाँ, आप ! अब फिर क्या करने आये हैं ? कौन है ? बाहर मोटरमें कौन है ?

छोटूभाई—क्षमा कीजिए, मुझसे बहुत भारी भूल हुई । अन्दर चलिए मैं सब बतला दूँ । [दोनों परेशानसे अन्दर जाते हैं] बात असल में यों हुई कि जब रुपये गिनकर थैलीमें डाले तो सब एकमें नहीं आते थे । इसलिए पाँच सौ दूसरी थैलीमें डाल लिये

थे। उस समय जल्दीमें वह दूसरी थैली आपको देना भूल गया था, यह लीजिये।

मेहता— भाग जाओ...रुपयोंका बच्चा

छोटूभाई—क्षमा कीजिए सा'व सुनिये तो !...सा'व...

मेहता— तुम मेहरबानी करो और यह सब उठाकर ले जाओ।

छोटूभाई—[हाथ जोड़ कर मिन्नत करते हुए] नहीं साहब, इतनी-सी भूल के लिए मुझ पर इतना गुस्सा न कीजिये। सच कहता हूँ मैंने धोखा देनेके विचारसे ऐसा नहीं किया।

मेहता— [उसकी कुछ न सुनते और अपनी ही कहे जाते हुए] तुम यह रुपये उठाओ, जल्दी करो, मुझसे जो होगा तुम्हारे लिए कर दूँगा मगर ये अपने रुपये लेकर दूर हो जाओ, आँखोंसे...!

[छोटूभाई भौंचक्का-सा होकर इधर-उधर देखता है]

मेहता— मैं कहता हूँ जाओ, जल्दी...[रुपयोंकी थैली जबरदस्ती उसके हाथोंमें ठूँसकर] जाओ, भगवान्के लिए जाओ...जाओ...!

[मेहता उसे रुपयों सहित दरवाजेके बाहर ढकेल देता है!]

प्रीति-भोज

०

प्रीति-भोज

[सदानन्द परिवार सहित खाने वाले कमरेमें बैठे नाश्ता कर रहे हैं। घुरीकाँटेके चलनेकी आवाज आ रही है। समोसेकी खुशबूसे कमरा महक रहा है।]

कमला— [सदानन्दसे] समोसे और चाहिए?

सदानन्द— मिल जाय तो क्या कहने!

पपू— मैं भी समोसे लूँगी।

कमला— तू पहले दूध तो पी।

धर्मदेव— आज तो छुट्टी है, हम भी और खाएँगे।

कमला— [चिढ़ कर] जो लोग शामको खाने पर आ रहे हैं, उनकी भी फ़िक्र है या समोसे ही बनते रहेंगे? [टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है] कान्ति, जरा देखना।

[कान्ति कोनेमें रखी मेज पर से टेलीफ़ोन उठा कर सुनती है।]

कान्ति— पिताजी, आपको सहगल साहब बुला रहे हैं।

कमला— अब सवेरे-सवेरे सहगल साहब क्या खबर देने लगे। अपने साथ कोई मेहमान ला रहे होंगे।

सदानन्द— सुनने तो दो। कितनी जल्दी घबरा जाती हो! [उठ कर टेलीफ़ोन सुनता है]।

कमला— पपू, चलो जल्दी करो—चटसे दूध पी जाओ। [प्याला पकड़ कर पपूके मुँहसे लगाती है]।

पपू— [रोना मुँह बना कर] मैं नहीं पीऊँगी—इसमें मलाई है।

कमला— चल, पी भी ले। मुझे और भी बहुतसे काम करने हैं।

सदानन्द— [लौटते हुए] सहगल कह रहे हैं कि वह नहीं आ सकेंगे।

कमला— यह सदा ही कुछ-न-कुछ गड़बड़ करते हैं।

सदानन्द— इसमें गड़बड़ क्या है ? दो आदमियोंके न आनेसे कौन-सा ऐसा खेल है जो खराब हो जायगा ?

कमला— खेल तो है ही—आज नहीं आयेंगे, तो दो दिन बाद फिर बुलाना पड़ेगा। मैं तो सोचती थी कि एक ही बार सब निबट जाते।

सदानन्द— निबटाना ही है, तो और बहुत हैं।

कमला— और कौन ?

सदानन्द— भाटियाको बुलाओ।

कमला— विचार तो अच्छा है, परन्तु...

सदानन्द— [बात काट कर] परन्तु क्या...

कमला— उनको वापस पहुँचाना पड़ेगा।

सदानन्द— क्यों ?

कान्ति— उनकी मोटर कारखानेमें पड़ी है।

सदानन्द— तो रहने दो उनको। रातको ग्यारह बजे उन्हें लोदी रोड छोड़ने कौन जायगा।

कान्ति— तो, माँ, सहदेव और गार्गीको भी बुला लो। वे भाटियाको वापस पहुँचा सकते हैं।

कमला— [खुश होकर] ठीक, बहुत ठीक। खूब रौनक रहेगी। [सदानन्द से] देखो, कान्तिने कितनी अच्छी सलाह दी।

सदानन्द— [मुसकरा कर] लेकिन उसका आना ठीक नहीं होगा।

कमला— क्यों ?

सदानन्द— वह इस पार्टीमें ठीक जँचेगा नहीं।

कमला— क्यों ?

सदानन्द— और मेहमान सब सरकारी अफ़सर हैं। अपने-अपने दफ़्तर तथा महकमेकी बातें करेंगे। और वह अकेला बैठा इनकम टैक्सका रोना रोता रहेगा।

कान्ति— बुला लो, माँ। ऐसे-ऐसे लतीफ़े सुनाते हैं कि हँसते-हँसते पेटमें दर्द होने लगता है।

सदानन्द—किसी औरको तो बात करनेका अवसर नहीं देता। गँवारोंकी तरह शोर कितना मचाता है!

कमला— आपको तबीअतका भी कुछ पता नहीं लगता—न बोलो तो कहते हो बुद्धू है, और बोलो तो गँवार! लेकिन मुझे तो ऐसे सीधे मनुष्य बहुत पसन्द हैं।

सदानन्द—चाहे कुछ भी हो, वह इस पार्टीमें नहीं चलेगा।

धर्मदेव— [माँ-बापकी बहससे तंग आकर] तो रहने दो दोनोंको, यशके माता-पिताको बुला लो।

सदानन्द—यश कौन?

कमला— इसका मतलब सेठीसे है। उनका लड़का यश इसका मित्र है।

सदानन्द—हाँ, उन्हींको बुला लो।

कमला— मैं तो नहीं बुलाती। पिछले मंगलको उन्होंने हमें दावतमें बुलाया था?

सदानन्द—पड़ोसमें रहते हैं—आखिर किसीको तो पहले करनी ही होगी। अगर तुम ही पहले बुला लोगी तो क्या बिगड़ जायगा?

कमला— जो समाजकी रीति है, उसका तो पालन करना ही चाहिए। हम इस कोठीमें उनके बादमें आये। उनसे मिलने भी गये। पहले तो उन्हीको बुलाना चाहिए।

सदानन्द—अब छोड़ो ये विदेशी सभ्यताके नियम। मैं टेलीफ़ोन किये देता हूँ।

कान्ति— टेलीफ़ोन तो उनके यहाँ है नहीं।

सदानन्द—तो देव कह आयेगा।

कमला— इस तरह दो-चार घण्टे पहले बुलानेसे तो वह समझ जायँगे कि उन्हें किसी की जगह बुलाया जा रहा है।

सदानन्द—तो रहने दो, मत बुलाओ। ग्यारह बज रहे हैं, तुम रोटीकी फ़िक्र करो।

कमला— जिन लोगोंके यहाँ हमने खाया है, उन सबको एक ही वार क्यों न निवटा दूँ? रोज़रोज़ मुसीवत कौन करे!

सदानन्द—ऐसी ही मुसीवत थी, तो दावत दी ही क्यों?

कमला— आप तो यों ही झुंझला रहे हैं। चोपड़ा और कमला यहाँ थोड़े दिनके लिए आये हैं। तुम गुलमर्गमें उनके पास पूरे दस दिन रहे थे। क्या यह अच्छा लगता है कि हम उनको एक वार भी खाने पर न वुलायें?

सदानन्द—वीस मेहमान और जो वुलाये हैं, वह किस लिए।

कमला— चोपड़ा और कमलाके लिए।

कान्ति— तव तो, माँ, पड़ोस वाले नन्दाको भी वुलाना चाहिए, रेलवे के अफ़सर ठहरे।

कमला— हाँ, ठीक कहती हो। रेल वालोंसे मित्रता करनेमें फ़ायदा है। ज़रा जाओ तो, देव, उनसे कह आओ।

देव— मैं नहीं जाता। जव पार्टी होती है, तो हमें खाना अलग दिया जाता है।

कमला— अभी तुम वच्चे हो न, वेटा। जव कालेज जाने लगोगे, तो...

देव— [तीखे स्वरमें] हाँ, जी! अव मैं वच्चा हो गया। और कल जव कान्तिको ललिताके घर पहुँचाना था, तो मैं वड़ा भाई वन गया था।

कान्ति— हूँ! एक वार ज़रा-सा काम कर दिया, तो कौन-सा तीर मार दिया।

देव— तो जाओ, फिर तुम्हीं कह आओ न। उस समय तो सुन्दर-सी साड़ी पहन कर सज जाओगी।

कान्ति— घवराते क्यों हो? छः महीने ठहर जाओ—तुम्हें भी सूट मिल जायेंगे।

देव— यह मैट्रिककी परीक्षा क्या हुई, मेरे सिर पर एक भूत सवार

हो गया—जो बात हो, कालेज जाकर। और जो कहीं फ़ेल हो गया, तो ?

[सब हँसते हैं]

कान्ति— वह तो तुम्हारी अपनी नालायक़ी होगी।

देव— [गुस्सेसे] देखो, कान्ति, ज़बान संभाल कर बात करो।

सदानन्द— बेटा, बड़ी बहनसे इस तरह नहीं बोलते। अब तुम कोई बच्चे तो हो नहीं। और तीन-चार महीने बाद कालेजमें पढ़ने लगोगे। [देव खीझ कर उठ जाता है और खिड़कीके पास खड़ा होकर बाहर झांकने लगता है] इस तरह छोटी-छोटी बातों पर हमेशा ज़िद करना तुम्हें शोभा नहीं देता। जाओ, जहाँ माँ कहती है, हो आओ।

कमला— उनसे कह देना कि पहले भी दोचार बार आदमी भेजा था, लेकिन वह मिले नहीं।

सदानन्द— सच कह रही हो या झूठ ?

कमला— सचझूठका कोई सवाल नहीं। तुम काम करने दो। [निश्चिन्त भावसे] चलो, यह तो तय हुआ। अब बताओ पकाना क्या है ?

सदानन्द— यह तो स्त्रियोंका काम है। तुम और कान्ति फ़ैसला कर लो।

कमला— आप कहते तो हमेशा यही हैं, परन्तु मेरा बनाया हुआ खाना कभी पसन्द भी तो नहीं आता आपको ?

सदानन्द— [हँसकर] क्यों ताने मारती हो ? जो चाहे बना लो, मैं कुछ नहीं कहूँगा।

कान्ति— मैं बताऊँ—एक तो आलूकी कचौरी बनाओ, और पनीरकी खीर...

पप्पू— मैं सूप पीऊँगी।

कमला— तू पहले दूध तो पी। डेढ़ घण्टेसे प्याला सामने रखा है, अभी आधा भी नहीं हुआ। [सदानन्दसे] हाँ, तो बताओ न, क्या बनायें ?

सदानन्द—— कह तो दिया जो तुम चाहो बना लो ।

[कमला मुसकरा देती है]

कान्ति—— माँ, आलूकी कचौरी और पनीरकी खीर जरूर बनाओ ।

कमला—— बनायेगा कौन ?

कान्ति—— मै बनाऊँगी । हमने पिछले सोमवारको कालेजमें सीखा था ।

सदानन्द—— तुम मेहरबानी करो खाने वालों पर । जो चीजें कालेजमें बनाना सीख रही हो, वह अपने ही घरमें बनाना ।

[कान्ति लजा जाती है]

कमला—— उसको शौक़ है, तो बनाने दो न । आखिर कालेज भी तो इसीलिए भेजा है । और फिर जब तक अभ्यास नहीं होगा, चीज ठीक कैसे बनेगी ?

सदानन्द—— खाना पकानेका अभ्यास कोई कालेजका सबक़ थोड़े ही है, जो कापी सामने रख कर याद किया जाय ।

देव—— और, पापा, केवल कापी ही नहीं, तराजू, बाँट, आउंस मेजर और बूँदे गिननेके लिए ड्रापर भी ज़रूरी है । [हँसता है] खाना क्या, अच्छा खासा नुस्खा तैयार करना होता है ।

कान्ति—— तू चुप रह । उस दिन मेरे नोट्सकी कापी रसोईमें रह गई थी, तो महाराजने रद्दी समझ कर जला दी । [रोनी सूरत बना लेती है] ।

देव—— [हँसते हुए] इसमें रोनेकी क्या बात है ?

[टेलीफ़ोनकी घण्टी बजती है । सदानन्द उठ कर टेलीफ़ोन सुनने जाता है । देव बराबर वाले कमरेमें चला जाता है]

कमला—— [कान्तिको मनाते हुए] चल, जाने दे । अभी कितना काम पड़ा है । तू जरा बरतन निकलवा । तब तक मैं बाजार हो आऊँ ।

कान्ति—— लेकिन चाँदीके बरतन तो सेफ़में रखे हैं ।

कमला— अरे बाबा, तब तो जल्दी करनी पड़ेगी। आज है भी रविवार, कहीं सेफ़ बन्द न हो गया हो।

कान्ति— नहीं, चार बजे तक खुला रहेगा, अभी तो बारह ही बजे हैं।

कमला— बारह बज गये!

सदानन्द— [हाथमें टेलीफ़ोन पकड़े हुए] मिसेज कोहलीका टेलीफ़ोन है।

कमला— क्या कहती है?

सदानन्द— [टेलीफ़ोन पर हाथ रख कर] तुम्हें बुला रही है।

कमला— [टेलीफ़ोन लेकर] हाँ, कौन लक्ष्मी...नमस्ते...धन्यवाद... आप अच्छी तो हैं...जी, हां, कहिए...कौन? आपके मित्र... नहीं, मैं नहीं जानती उन्हें...यह तो बड़ी खुशीकी बात है... हाँ, हाँ, ज़रूर लाइए। इसमें हिचकिचानेकी क्या जरूरत है... नहीं, अभी तो किसी चीजकी जरूरत नहीं। कुछ चाहिएगा, तो टेलीफ़ोन कर दूँगी...नमस्ते! [टेलीफ़ोन पटककर] तीन आदमी अपने साथमें और ला रही हैं।

सदानन्द— कौन हैं?

कमला— मुझे क्या मालूम! पूछ रही थी कि तीन मेहमान अभी-अभी आये हैं, उनको भी साथ लेती आऊँ? मैं कैसे मना करती?

सदानन्द— ये लोग भी कितना परेशान करते हैं!

कमला— मैं तो स्वयं तंग हूँ इस चुड़ैलसे। कभी भी तो ऐसा नहीं हुआ कि यह आई हो और अपने साथ दो-तीन बेबुलाये मेहमानोंको न लाई हो।

सदानन्द— और वह कोहली भी मालूम पड़ता है, बिलकुल गधा है। बीबी पगली है, तो क्या वह भी इतना नहीं समझता कि राशनके ज़मानेमें किसीको खिलाना-पिलाना कितना मुश्किल है।

कमला— हद हो गई!

सदानन्द— अब तो सिर पर आई निभानी ही पड़ेगी।

कमला— [हताश होकर] कान्ति, देखना देव अभी नन्दाके यहाँ न गया हो, तो उसे रोक लो।

[देव आता है]

देव— माँ, उनसे कह आया हूँ। बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। ज़रूर आयेंगे। अब मैं जा रहा हूँ क्रिकेटका मैच देखने—शामको लौटूँगा।

कमला— आज न जाते तो अच्छा था। घरमें काम है।

[देव बिना सुने ही भाग जाता है]

सदानन्द— जाने दो उसे। खेलकूद आयेगा। काम करनेके लिए नौकर जो है।

कमला— जी, हाँ, बहुतसे नौकर हैं! [व्यंग्यसे] एक तो आपका चपरासी ही है—अभी तक नहीं पहुँचा।

सदानन्द— आजकल इन लोगोंके मिजाज बिगड़े हुए हैं। अपने अफ़सर तककी तो परवा करते नहीं, उसके घरवालोंकी क्या करेंगे!

कमला— आप ही ने तो कहा था कि चपरासी ला देगा सामान। उसीके भरोसे बैठी रही, नहीं तो कबका मँगा लिया होता।

सदानन्द— क्या ख़रीदना है? चलो, अब ले आयें। मैं मोटर निकालता हूँ, तुम तब तक महाराजको बता दो क्या बताना है।

कमला— क्या बजा है?

कान्ति— साढ़े बारह।

कमला— तो इस समय जानेसे क्या लाभ? दो घण्टे तो लगेंगे ही। न इधरके रहेंगे, न उधरके। खाना खानेके बाद ही चलेंगे।

सदानन्द— दो घण्टेका वहाँ क्या काम—बाजारसे सब्ज़ी, और फल ही तो लाने हैं।

कमला— और बैंक भी तो जाना है।

सदानन्द— कल सुबह ही तो मैंने तुम्हें दो सौ रुपये दिये थे। आज फिर बैंक? कहाँ गये सब रुपये?

कमला— सत्तर रुपयेकी तो मेरी साड़ी ही आई थी। एक सौ तीस ही तो बचे हैं अब। खैर, घबराओ नहीं, बैंकसे तो मुझे चाँदीके बरतन निकालने हैं।

सदानन्द—जाने भी दो चाँदीके बरतनोंको। कल फिर उन्हें रखने जाना होगा।

कान्ति— नहीं, पिताजी, रातको खाना हो, तो चाँदीके बरतन बहुत अच्छे लगते हैं। कमरा जगमगा उठता है।

कमला— और फिर चाँदीके बरतन हैं किस लिए, जो ऐसे अवसर पर इस्तेमाल न किये जायँ ?

सदानन्द—जिन लोगोंको तुम बुला रही हो, उन सबने तो ये बरतन देखे हुए हैं—अब और किसको दिखाने हैं ?

कमला— सबने कहाँ देखे हैं। और देखे भी हों तो क्या ? माँगेके थोड़े ही हैं कि एक बार दिखाकर लौटा दिये।

सदानन्द—जो अनजाने मेहमान आ रहे हैं, उनमेंसे कोई चोर हुआ, तो ?

कमला— ईश्वरके लिए ऐसे अशुभ वचन न निकालो।

सदानन्द—जैसी लूटमार आजकल हो रही है, उसे देख कर ऐसा होना असंभव नहीं।

कमला— [कान्तिसे] तो फिर क्या करें ?

सदानन्द—मैं कहता हूँ बरतनोंकी फ़िक्र छोड़ो, दावतके लिए खाना बनवाना शुरू करो।

कमला— चीजें तो बन जायँगी। बनानेमें देर ही कितनी लगती है। दो घण्टेका काम है सारा।

सदानन्द—जरा बाजारका काम जल्दी कर लेतीं, तो मैं भी दो घण्टे ब्रिज खेल आता।

कमला— बस खाना खाते ही चल पड़ेंगे। कान्ति, महाराजसे पूछो तो कितनी देर है ?

[रायसिंह आता है]

रायसिंह—बीवीजी, महाराजके पेटमें बड़े ज़ोरसे दर्द हो रहा है।

कमला— लो, यह एक और मुसीबत आई।

सदानन्द—[रायसिंहसे] हुआ क्या है उस गधेको ?

रायसिंह—यह तो मुझे मालूम नहीं—वह अपनी कोठरीमें चारपाई पर लेटा हुआ है।

कमला— [घबराकर] अब क्या करें ? मैंने तो लक्ष्मीसे भी नौकर भेजनेको मना कर दिया था।

कान्ति— होटलसे कोई आदमी बुलवा लो। दस रुपये लेगा।

सदानन्द—पैसे देकर तो सब कुछ हो सकता है; ख़ुद भी थोड़ी हिम्मत करना सीखो।

कान्ति— तो लक्ष्मी मौसीसे पूछूँ ?

कमला— पहले उसको तो देखो हुआ क्या है ? जब भी काम होता है बीमार पड़ जाता है।

कान्ति— मुझे तो लगता है वह बहाना कर रहा है।

कमला— कुछ भी हो, इस समय तो कोई-न-कोई बन्दोबस्त करना ही चाहिए।

सदानन्द—इन नौकरोंकी जाति ही ऐसी है। शुरू-शुरूमें तो बड़ा मन लगा कर काम करते हैं। फ़िर दिमाग़ आसमान पर चढ़ जाता है। सोचते हैं जैसे इनके बिना हमारा गुज़ारा हो ही नहीं सकता। [कमलासे] यदि तुमने आज दावतका झंझट न किया होता तो धक्के देकर उसे बाहर निकाल देता।

कमला— न, न, ऐसा न करना! मैं लक्ष्मीकी तरह लोगोंको डिब्बोंका खाना नहीं खिलाना चाहती। [कान्तिसे] ज़रा लक्ष्मीको टेलीफ़ोन करके तो देखो। पूछो अपने रसोइयेको भेज सकती है ?

[कान्ति टेलीफ़ोन करने लगती है]

कमला— [सदानन्दसे] आप जरा महाराजके पास जाइए—उससे प्यार से बातचीत करना। सहानुभूति प्रकट करना। उसे तसल्ली हो जायगी।

सदानन्द— जाता हूँ। शायद कुछ हो जाँय। [उठता है]।

कमला— देखना, जरा नम्रतासे बात करना, कहीं इतनेसे भी हाथ न धो बैठें।

कान्ति— एक सेरीडानकी गोली दो, तो सब ठीक हो जायगा।

कमला— सेरीडान तो है नहीं।

सदानन्द— [खीझ कर] तो लाल स्याहीकी गोली ही दे दो।

कान्ति— वह तो जहर होती है।

कमला— [घबरा कर] कहीं सचमुच दे ही न देना—मर गया, तो और मुसीबत पड़ेगी।

सदानन्द— क्या समझ रखा है तुमने मुझे? मैं पागल हूँ जो उसे ज़हर दे दूँगा? लेकिन सवाल यह है कि यदि वह न माना, तो खानेका क्या होगा?

कमला— [चिढ़ कर] मुझसे पूछते हैं?

सदानन्द— और किससे पूछूँ?

कमला— मेरी बलासे। आपके ही दोस्त आ रहे हैं। आप ही निकालिए कोई तरक़ीब।

सदानन्द— यह खूब रही! जब प्रबन्ध करना हो तो मित्र मेरे, और जब तारीफ़ हो तो तुम!

कमला— [नम्र होकर] इन झगड़ोंसे क्या लाभ? तुम जाकर ज़रा देखो तो उसे हुआ क्या है?

सदानन्द— हुआ वही है, जो सबको होता है। तनख्वाहमें दो चार रुपये और बढ़ा दो, ठीक हो जायगा।

कमला— यह तो मैं नहीं होने दूँगी। यह तो सरासर गले पर छुरी रखकर लेनेवाली बात हुई।

कान्ति— [टेलीफ़ोन रख कर] मौसीजी कहती हैं कि उनका महाराज तो छुट्टी ले गया है। रातका खाना तो वनाना था नहीं और आपने भी मना कर दिया था।

कमला— [लाचारीसे] तो फिर क्या करें—दे दें उसे दोचार रुपये और ?

कान्ति— तनख्वाह् वढ़ानेके वजाय उसे दोचार रुपये इनाम जो दे दें।

सदानन्द— इनाम तो खानेके वाद दिया जाता है। लेकिन उससे पहले क्या होगा ?

कमला— [कान्तिसे] तुम परांठे तो वना लोगी न ?

कान्ति— परांठे वनाना हमें सिखाया ही नही गया अभी।

सदानन्द— [आवेशमें] कोई कामकी चीज़ सिखाई भी है ?

कमला— परांठोंमें सीखने वाली वात ही क्या है ? आटा गुंधा हुआ रखा ही है। रायसिंह वेलता जायगा, तुम तवे पर डालकर घीमें सेंक लेना।

कान्ति— कौनसे घीमें वनाऊँ—असली या वनस्पति ?

कमला— इस समयके लिए तो वड़े टीनमेंसे निकाल लो, और रातके लिए जो दस पाउंड वाला वनस्पतिका टीन मँगाया था, उसे खोल लेना।

सदानन्द— तो तुम खाना वनाओगी इस समय ?

कमला— विचार तो यही है।

सदानन्द— तव हम जा चुके वाज़ार।

कमला— आप ज़रा महाराजकी ख़वर तो लीजिए। तव तक खाना तैयार हो जायगा।

सदानन्द— मेरी तो भूखके मारे जान निकल रही है और इस गधेको वहाना करके लेटनेकी पड़ी है। [जाने लगता है]

[सदानन्द अभी दरवाज़े तक ही पहुँचता है कि पपू वाहरसे रोती हुई आती है, हाथ रंगे हैं।]

सदानन्द— क्यों, क्या हुआ ?

पपू— भैयाने मारा।

सदानन्द— [उसे गोदीमें उठा कर] तूने उनकी चीजोंको क्यों छुआ था?

कमला— [सदानन्दकी गोदीमें से पपूको लेकर] तू तो मेरी रानी बेटी है। [आंसू पोंछ कर] देखो, अभी कान्ति छोटा-सा परांठा बनाकर लायेगी पपूके लिए।

कान्ति— माँ, इसे भूख तो है नहीं। इसका सोनेका समय हो रहा है।

सदानन्द— इस समय मत सोने देना इसे। नहीं तो रातको मुसीबत करेगी। शामको जरा जल्दी खिला-पिला कर सुला देना।

कमला— अच्छा। तो फिर चलें बाजार?

सदानन्द— कमाल करती हो तुम भी! अभी तो तुम कह रही थीं कि खाना खाकर चलेंगे।

कमला— महाराज जो बीमार पड़ गया है।

सदानन्द— मुझे तो पहले ही आज खाना मिलनेकी आशा नहीं थी।

कमला— खाना बनानेमें कुछ देर तो लगेगी ही। रायसिंह अंगीठी सुलगा रहा है। जैसे ही वह सुलगी और खाना तैयार समझो।

सदानन्द— कैसे समझ लूं! मैं ऐसे खानेसे बिना खाये ही अच्छा। मुझे तो दो चार बिस्कुट दे दो। मक्खन और पनीरका डिब्बा खोल दो। फिर तुम जानो और तुम्हारा काम।

[अलमारीमें से पनीरका डिब्बा निकाल कर उसका ढकना काटना शुरू करता है। टेलीफ़ोनकी घण्टी बजती है। सुनने जाता है।]

कमला— कान्ति, तो फिर तुम परांठे तो बना ही लेगी।

कान्ति— क्यों नहीं।

कमला— और क्या बनायें?

कान्ति— पनीर भी मैं बना लूंगी। बाक़ी चीजें तो पकीपकाई डिब्बोंमें मिल जाती हैं। हाँ, पुलाव बनानेके लिए रायल होटलसे कश्मीरी पण्डितको बुला लो।

कमला— डिब्बे किस चीज़के लाऊं ?

कान्ति— सूपके ।

कमला— खड़े-खड़े सूप कैसे खायेंगे ?

सदानन्द—[गुस्सेसे टेलीफ़ोन पटकते हुए] कुछ न बनाओ इन सालोंके लिए । अफसरी तो इनके दिमागमेंसे किसी समय भी नही निकलती ।

कमला— क्यो, क्या हुआ ?

सदानन्द—खोसलाका बच्चा कहता है कि वह नौ बजेसे पहले नही पहुँच सकता ।

कमला— क्यों ?

सदानन्द—कारण नही बताया । कही बैठ कर चढ़ायगा । मुझे तो गुस्सा इस बात पर आता है कि सब जगह ठीक वक़्त पर पहुँचता है, पर क्योकि मै उसके साथ काम करता हूँ, इसलिए मेरे यहाँ समय पर आनेसे उसकी शान कम हो जायगी ।

कमला— और लोग भी आठ बजे थोड़े ही आयेंगे ।

सदानन्द—लेकिन जो आठ बजे आ गये, तो उन्हें घण्टे भर इन्तज़ार करना बुरा लगेगा ।

कमला— अरे, गपशप करते रहेगे ।

सदानन्द—परन्तु यह तो प्रत्यक्ष है कि वह मेरा अफ़सर होनेका लाभ उठा रहा है ।

कमला— तो कर भी क्या सकते हो ?

सदानन्द—तुम्ही बताओ क्या करूँ ? यदि और कोई ऐसा करनेकी हिम्मत करता, तो साफ़-साफ़ कह देता कि इतनी देर प्रतीक्षा करना कठिन होगा ।

कमला— चलो, अब जाने दो । बाज़ार चलें ?

सदानन्द—[पनीरका टुकड़ा मुंहमें डाल कर] चलो । [अलमारी खोल कर] एक बिस्कुट और खा लूँ ।

कमला— खाना क्या-क्या है ?

सदानन्द— जो कुछ मिल जायगा ।

कमला— मेरी तो राय है कि चन्द डिब्बे ले लें—पकौगकाई चीजें होंगी । कोई झंझट ही नहीं रहेगा ।

सदानन्द— लेकिन डिब्बेकी सब चीजोंका एक-सा ही स्वाद होता है । इससे तो तन्दूरकी रोटियां और मांश की दाल ले लो । स्वाद तो आ जायगा ।

कमला— परांठे तो कान्ति बना लेगी । तन्दूरकी रोटियोंकी जरूरत नहीं । परन्तु बाक़ी चीजें बनाना तो मुश्किल है । आपका चपरासी भी तो नहीं आया । रायसिंह अकेला क्या क्या करेगा ?

सदानन्द— तुम सबने मिलकर मुझे तो पागल बना दिया । [सिर पकड़ कर बैठ जाता है] मेरी तो समझमें कुछ नहीं आता । तुम जैसा चाहो करो ।

कमला— यह खूब रही ! एक तो महाराज बैठ गया और अब आप परेशान कर रहे हैं । मैं भी बायकाट कर दूं, तो कैसा रहे ?

सदानन्द— तुम जैसा कहोगी मैं करता जाऊँगा—और क्या चाहती हो ?

कमला— मैंने तो सीधा तरीक़ा बता दिया—जब तक हम बाज़ार होकर आते हैं, कान्ति परांठे बना लेगी ।

कान्ति— मां, कितने परांठे बनाऊँ ।

कमला— पचीस आदमी होंगे—पचास काफ़ी होंगे ।

सदानन्द— [व्यंग्यसे] मेरे लिए तो आठ परांठे बनाना—मैं सुबहका भूखा हूँ ।

कमला— छोड़िए भी । यह समय मजाकका नहीं ।

सदानन्द— मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ । मुझे बड़े ज़ोरकी भूख लग रही है । [कमला हँसती है] और उन लोगोंका भी ध्यान रखना, जो अपने ड्राइवरोंको भी खाना खिलवाते हैं और घरवालोंको भी भिजवाते हैं ।

कमला— यह नहीं होगा। मेरे यहाँ कोई शादी थोड़े ही है।

कान्ति— थोड़े ज्यादा ही बना लेंगे, माँ। वनस्पतिमें ही तो बनेंगे।

सदानन्द— ऐं, वनस्पतिमें! और अभी से बना कर रख दोगी—रात तक प पड़ ही जायँगे।

कमला— नहीं होंगे। आप चलनेकी तैयारी कीजिये।

[टेलीफ़ोनकी घण्टी बजती है। सदानन्द सुनता है]

सदानन्द— हाँ...फ़रमाइए...जी, चोपड़ा साहब...क्या कहा आपने? आज रातको...तार कहाँसे आ गया...इसमें डरनेकी बात तो कोई नहीं...कहिए न, साहब...हाँ, हाँ, जल्दी आइए ...क्या कहा गाड़ी सवा नौ बजे जाती है, आपको खाना आठ बजे तक अवश्य मिल जाना चाहिए...अच्छा।

[टेलीफ़ोनको इतनी ज़ोरसे पटकता है कि वह नीचे गिर पड़ता है और टुकड़े-टुकड़े हो जाता है]

कमला— क्या भूकम्प आ गया?

सदानन्द— ऐसीतैसी इन सबकी! भाड़में जायँ सबके सब। एक कहता है नौ बजेसे पहले नहीं पहुँच सकता, और जिसके लिए यह सब बरबादी हुई, वह आठ ही बजे खाकर चला जाना चाहता है।

कमला— कौन, चोपड़ा?

सदानन्द— हाँ, वही तुम्हारी सहेली और उसका मियाँ चोपड़ा! चूल्हेमें जाय ऐसी दावत।

[कमलाके हाथसे चीनीकी बड़ी प्लेट गिर जाती है। वह निस्सहाय सी सदानन्दकी ओर देखती है, जो एक-एक करके सब बरतन खिड़कीके बाहर फेंके जाता है।]

[परदा]

आवागमन

०

आवागमन

[मञ्च पर बिलकुल अँधेरा है, केवल कुछ व्यक्ति सिरसे पैर तक सफ़ेद कपड़ोंमें दिखाई देते हैं। इनके ऊपर सफेद रोशनी भी पड़ रही है। पीछे वाला परदा काला है, उस पर तारे चमक रहे हैं। आसपास तथा नीचे जमीन पर घोर अन्धकार है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये लोग कहीं आकाशमें टँगे हैं। हाथमें झण्डा पकड़े नेता एक छोटी-सी लकड़ीकी पेटी पर खड़े लोगोंको लेक्चर दे रहे हैं।]

नेता— यह अन्याय नहीं तो क्या है? भाइयो और बहनो, मैंने अपनी साठ सालकी आयुमें ऐसा जुल्म होता नहीं देखा। क्या हम इसे चुपचाप सहन कर लेंगे? नहीं! कभी नहीं! [लोग ताली बजाते हैं। नेता अपना भाषण जारी रखता है।] यहाँ साधारण जनताकी पुकार कौन सुनता है! कहते हैं फैसला होगा कि हम नरकमें भेजे जायँगे या स्वर्गमें? हम तो प्रतीक्षा करते-करते थक गये। इस दुविधासे तो, भई, हमें नरकमें ही फेंको और छुट्टी करो। लेकिन नरकमें क्यों? हमने कौन-सा ऐसा पाप किया है कि हम स्वर्गमें नहीं जा सकते? क्यों, भाइयो? एक जोरदार नारा लगाकर अपनी आवाज उठाओ तो।

[देवदूत आता है]

देवदूत— [नेतासे] मैंने आपसे पहले भी कहा है कि यहाँ पर यह भाषणबाजी नहीं चल सकती। अपनी धरतीकी सब बातें भूल जाओ। अब तुम एक दूसरी दुनियामें हो। [लोगोंसे] आप सब अपना रास्ता पकड़िए।

[लोग धीरे-धीरे खिसक जाते हैं। केवल नेता अपनी पेटी पर खड़ा रह जाता है।]

देवदूत— यह पेटी कहाँसे लाये हो ?

नेता— इसे तो मैं सदा अपने पास रखता हूँ। क्या मालूम किस समय इसकी ज़रूरत पड़ जाय।

देवदूत— यहाँ पर इसकी आज्ञा नहीं है। नीचे उतरो !

[नेता उतरता है। देवदूत पेटीको उठा कर एक कोनेमें रख देता है और चला जाता है।]

नेता— [स्वतः, परन्तु बोलनेका ढंग ऐसा है मानो सामने श्रोतागण बैठे हों] भाषण हमारा मूल अधिकार है। इसे हमसे कौन छीन सकता है !

[एक लम्बी कर्कश ध्वनि होती है, जिससे यह जान पड़ता है कि एक और व्यक्तिकी आत्मा धरतीसे आ रही है। दो चार क्षणमें एक संवाददाता हाथमें नोटबुक लिये प्रवेश करता है।]

संवाददाता— आप कुछ कह रहे थे ?

नेता— तुम हो कौन ?

संवाददाता— मै एक अखबारका संवाददाता हूँ। मैंने कुछ क्षण पहले चालीस वर्ष तक संवाददाताका काम करते-करते अपना शरीर त्याग दिया।

नेता— आप ठीक मौक़े पर आ गये। आपका यहाँ होना बहुत आवश्यक है। देखो तो, यहाँ कैसा अत्याचार हो रहा है ! हमारे जन्मसिद्ध अधिकारोंको किस प्रकार कुचला जा रहा है, दुनिया वालोंको इसकी खबर देनी चाहिए। आप अभी इसकी रिपोर्ट अपने अखबारको भेज दीजिए और उनसे कहिए कि इसे मुख्य पृष्ठ पर मोटे अक्षरोंमें छापें।

संवाददाता— आप यहाँ पर भी लेक्चर और आन्दोलनसे बाज नहीं आये ?

नेता— जब तक मुझमें दम है मैं अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए लड़ता रहूँगा ।

संवाददाता— आप भूल रहे हैं—आप जीवित नही है । और जहां तक आदर्शोंका सवाल है आपको केवल अपनी व्यक्तिगत उन्नति की ही चिन्ता है । किन्तु यह सब बातें यहां नही चलेगी । अपनेको व्यर्थ इस धोखेमे न रखिए । यह धरती नही जहाँ आप लोगोंकी कुसम्मति कर अपना उल्लू सीधा कर लेगे ।

नेता— तुम एक धरतीकी बात करते हो—मैं अपना मत सातों लोकमे फैलाऊँगा । एक जनमें नही, चौरासी लाख योनियों में भी मैं अपना आदर्श नहीं छोड़ूँगा । चाहो तो तुम मेरा यह प्रोग्राम टेलीप्रिंटर पर भेज दो ।

संवाददाता— [हँसकर] आपको जो कहना है लिख कर दीजिये । मुझे आपकी जबान पर विश्वास नही ।

नेता— [भड़क कर] क्या मतलब ? मेरा अपमान करना चाहते हो ?

संवाददाता— दूधका जला छाछको फूँक कर पीता है । आप नेता ठहरे, नेताओंकी स्मरणशक्ति जरा कमजोर होती है । याद है आपके कारण मुझे अपनी नौकरीसे हाथ धोना पड़ा था ?

नेता— झूठ । मैंने कभी किसीको कोई हानि नही पहुँचाई ।

संवाददाता— न जाने आप हानि किसे कहते हैं ! परन्तु इतना तो याद होगा कि दस वर्ष पूर्व जब देश भरमें कपड़ेकी मिलोमे जबरदस्त हड़ताल चल रही थी तो आपने मजदूरोंके बीच खड़े होकर वह धूआँधार भाषण दिया था कि क्या कहें ! और जब अपने दिन अखबारोंमें वह छपा और आप पर मुख्य मन्त्रीकी झाड़ पड़ी, तो आप साफ़ मुकर गये कि आपने ऐसी बात कभी कही ही नहीं । आपने हमारे अखबारके संपादक से शिकायत भी कर दी कि मेरे जैसे ग़ैरजिम्मेदार व्यक्तिको

ऐसा दायित्वपूर्ण काम नहीं सौंपना चाहिए। संपादकने आव देखा न ताव मुझे उसी क्षण निकाल बाहर किया।

[फिर वही लम्बी कर्कश ध्वनि होती है और एक स्त्री प्रवेश करती है।]

नेता— क्षमा कीजिए, यहाँ पर आपके बैठनेकी कोई जगह नहीं है। मेरे पास केवल यह पेटी है। [कोनेसे पेटी उठा कर उसके पास लाकर रख देता है।]

स्त्री— यह आप ही को मुबारक हो!

नेता— आपका मतलब?

स्त्री— मैं कई वर्षोंसे आपको इस पर खड़े होकर भाषण देते देखती आई हूँ। दिमाग़ चाट जाते थे बोल बोल कर।

नेता— [नाराज़ होकर] आपको इस तरह बदतमीज़ीसे बात करने का कोई हक़ नहीं है।

स्त्री— आप हक़की कहते हैं, मैं तो आप पर मुक़दमा चलाऊँगी।

संवाददाता— [अपनी नोटबुकमें लिखते हुए] सनसनी पूर्ण घटना... एक सुन्दर युवतीका माननीय नेता पर आरोप...बहुत दिलचस्प कहानी...

नेता— तुम तो कहते थे यहाँसे कोई सूचना नहीं भेजी जा सकती?

संवाददाता— अरे, हाँ, ठीक तो कहते हैं आप। मैं कुछ बौखला-सा गया हूँ। आदतसे लाचार हूँ। [नोटबुक बन्द करके जेबमें रख लेता है।]

नेता— श्रीमतीजी, आप कुछ क्रोधित जान पड़ती हैं। मैं पूछ सकता हूँ इसका कारण क्या है? जहाँ तक मुझे याद है मैंने तो कभी आपको कोई कष्ट नहीं दिया।

स्त्री— कोई किसी को एकाधबार कष्ट दे तो याद भी रहे, जिनका सारा जीवन ही कपट और धोखेबाज़ीमें बीत जाये उन्हें क्या क्या याद रहेगा!

नेता— [व्यंग्यसे] हूँ! जरा सुनूँ तो मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?

स्त्री— सुनना चाहते हैं, तो सुनिए—आपको याद होगा कि मैं भी आप हीके गांवमें रहती थी। बहुत अमीर तो न थी, लेकिन गांववाले मेरा आदर करते थे, मेरी बात मानते थे। चुनाव के समय आपने मेरी सहायता मांगी थी और वह सब्ज बाग दिखाये हमें कि क्या कहूँ—तुम्हारे बेटेको अच्छी नौकरी दिला दूंगा, इस गांवमें अस्पताल बनवाऊंगा, रेलकी लाइन यहां तक आयेगी, लड़कोंके लिए हाई स्कूल होगा। आपकी बातोंसे तो ऐसा जान पड़ता था कि गरीबीका अन्त हो जायेगा, फसल दोगुनी होगी, किसान मालामाल हो जायेंगे। ऐसे झांसे दिये कि हम लोगोंने जीतोड़ मेहनत की और आप चुनाव जीत गये। पर हमें क्या मिला? आप राजधानीमें रहने लगे—हमारे गांवसे कोसों दूर। हम पर कई मुसीबतें आईं, बाढ़ आई, अकाल पड़ा, किन्तु आपने अपनी सूरत तक न दिखाई।

नेता— झूठ, बिलकुल झूठ। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब बाढ़ आई थी तो मैंने हवाई जहाज पर बैठ कर बाढ़-पीड़ित गांवों का ऊपरसे निरीक्षण किया था। जब अकाल पड़ा था तो मैंने ऐसा दर्दनाक भाषण दिया कि विधान सभाके सदस्योंके हृदय रो उठे।

स्त्री— आप उड़कर तमाशा देखते रहे, भाषण देते रहे और हमारे गांवके चालीस प्रतिशत लोग मर गये, हमारे पशु बह गये, हमारे घर नष्ट हो गये, हमारे खेत उजड़ गये।

नेता— मुझे यह सब सुनकर बहुत दुख हुआ था। परन्तु सोना तो आगमें तप कर ही निखरता है। संसारमें जितने बड़े-बड़े मनुष्य हुए हैं वे सब कष्ट भोग कर ही इतने ऊँचे पहुँचे हैं।

संवाददाता— वाह! वाह!

[फिर वही लम्बी-सी कर्कश ध्वनि होती है और मंच पर उपस्थित व्यक्ति उत्सुकतासे आगन्तुककी प्रतीक्षा करने लगते हैं। एक सरकारी अफ़सर प्रवेश करता है, परन्तु इन लोगोंकी ओर पीठ करके एक ओर खड़ा हो जाता है।]

संवाददाता— अरे, यह तो कमिश्नर साहब है ! [आगे बढ़कर] नमस्कार!

कमिश्नर— [रुखाईसे] नमस्कार !

नेता— कमिश्नर साहब, आपने मुझे पहचाना नहीं ?

कमिश्नर— खूब अच्छी तरह पहचानता हूँ आपको। नित्य नई सिफ़ारिशें लेकर आप मेरे पास आते थे—आज उसका तबादला रोक दीजिए, तो कल उसकी तरक्की कर दीजिए, यह मेरा भतीजा है, इसे ज़मीन दिला दीजिए, यह चाचा है, इसे ठेका मिल जाये तो आपकी कृपा होगी। और सिफ़ारिश भी सदा उन लोगोंकी करी जो बिलकुल निकम्मे, अयोग्य और भ्रष्ट थे।

नेता— देखिए, साहब, आप बहुत बढ़चढ़ कर बातें कर रहे है।

कमिश्नर— [तीखेपनसे] मैं ठीक ही कह रहा हूँ। जिन दुष्ट घूसखोरों को पकड़ कर जेलके अन्दर करना चाहिए था, आपने उनको शरण दी और न्यायकी कड़ी सजासे बचाया। नतीजा यह हुआ कि सरकारी कामकाजमें चारों ओर भ्रष्टाचार फैलता गया और शासकोंके प्रति जनताका विश्वास उठ गया।

नेता— देखिए, मिस्टर, जरा ज़बान सँभाल कर बात कीजिए, नहीं तो आप अपनी नौकरीसे हाथ धो बैठेंगे।

कमिश्नर— अब तक इसी डरसे तो जी खोल कर कुछ कह नहीं पाया था। परन्तु मुझे अपने विचार प्रकट करनेका अधिकार है। मुझे खुशी है कि आप यहाँ मिल गये। ज़रा दिलका गुबार तो निकाल लूँ।

[फिर वही कर्कश ध्वनि होती है। एक पुरुषकी आत्माका प्रवेश।]

नेता— [आगन्तुकको देखकर प्रसन्न होते हुए] अरे मित्र, तुम कहाँ ! कितने दिनों बाद मिले हो !

मित्र— आज आपने मुझे पहचान कैसे लिया ? क्या मुझसे कोई काम है ?

नेता— [उसके कन्धे पर हाथ रख कर] अरे, तुम तो मेरे बचपनके साथी हो। स्कूलमें हम इकट्ठे पढ़े, साथ खेले। क्या दिन थे वे भी ! भाइयोंमें भी इतना प्यार नहीं होता होगा। याद है न ?

मित्र— याद क्यों नहीं ! और यह भी याद है कि निर्वाचनके समय मैंने आपके लिए कितना काम किया था। अपना तन, मन, धन सब लगा दिया। सोचा, मित्रकी सहायता करनी चाहिए। परन्तु जब आप चुनावमें जीत गये, बड़े आदमी बन गये, तब तू कौन और मैं कौन ! यहाँ तक कि एक बार मिलने गया तो सीधे मुँह बात तक नहीं की। सोचा होगा कहीं कुछ माँग न बैठे।

नेता— नहीं, नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। तुम्हें भ्रम हुआ है। मैं तो देशसेवामें ऐसा उलझ गया कि अपने तनकी भी सुधबुध नहीं रही।

मित्र— चलो, जाने दो। ऐसा हुआ ही करता है।

[फिर वही लम्बी कर्कश ध्वनि। नेताके प्रतिद्वन्द्वीकी आत्मा आती है]

प्रतिद्वन्द्वी— [नेताको देखकर] तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? वही पुरानी चालबाजियाँ !

नेता— कैसी चालबाजी ? तुम तो आते ही झगड़ने लगे।

प्रतिद्वन्द्वी— [अन्य लोगोंसे] भाइयो, आप लोग इनसे बचकर रहिएगा। इनका काटा पानी भी नहीं माँगता। इन्होंने तो झूठसच बोल कर केवल अपना उल्लू सीधा करना सीखा है।

[फिर कर्कश ध्वनि और एक नवयुवक की आत्माका प्रवेश]

नवयुवक— [नेताकी ओर संकेत करके] यही है जिसने मेरी रोजी छीन ली, मुझे नौकरीसे हटा कर अपने चाचाके पोतेको मेरी जगह दिला दी। बेकारीका ज़माना। मैंने दर दर धक्के खाये, सबके सामने हाथ पसारा। अन्तमें तंग आकर मैंने आत्महत्या कर ली। मेरी मृत्युका जिम्मेदार यह है।

[नेता कुछ क्षण इधर-उधर देखता है। स्थिति गम्भीर होती देख जल्दीसे एक ओर रखी अपनी पेटी उठा लाता है और उस पर खड़ा होकर बोलना शुरू कर देता है।]

नेता— भाइयो और बहनो, आपने मुझे यह अवसर दिया कि मैं आपसे अपने मनकी दो चार बातें कह सकूँ। इसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ। मेरा सौभाग्य है कि मैं आप जैसे बुद्धिमान देशभक्त और कार्यकुशल सज्जनोंके बीच खड़ा हूँ। आप लोगोंने अपना ख़ून पसीना बहा कर इस देशको महान् बनाया, आपके परिश्रमसे भारत फिर अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृतिके गौरवको प्राप्त कर सका और संसारको शान्तिका सन्देश दे सका। आप अपनी निस्स्वार्थ सेवासे बापूके स्वप्नोंको प्रत्यक्ष रूप दे रहे है। आप लोग जानते ही हैं कि मैंने भी अपनी मातृभूमिके लिए अपना जीवन अर्पित किया है।

[नेताके भाषणको सुननेके लिए श्रोतागण इकट्ठे होने लगे हैं।]

स्त्री— [उठकर] भाइयो, आप फिर इनकी बातोंमें आने लगे क्या आप अपने अनुभवसे कुछ सीखेंगे भी या नहीं?

कुछ पुरुष— [स्त्रीसे] बैठ जाओ! बैठ जाओ! सुनने दो।

नेता— [अपना भाषण फिरसे चालू करते हुए] हाँ, तो मैं कह रहा था कि यह पंचवर्षीय योजना, यह हमारा महान् देश....

[देवदूत आता है]

देवदूत— [नेतासे] फिर वही हुल्लड़बाजी ! नीचे उतरो इस पेटी से ।

[नेता उतर जाता है । देवदूत पेटी उठा कर फिर कोनेमें रख देता है]

देवदूत— आप सब लोग इस दरवाज़ेसे भीतर जाइए । [पिछले परदे में एक दरवाजा खुलता है ।] वहाँ आपको बता दिया जायगा कि आपको किधर जाना है । [नेता बढ़ कर सबसे आगे होना चाहता है । देवदूत उसका कन्धा पकड़ कर उससे कहता है] आप इतनी जल्दी मत करिए । [अन्य लोगोंसे] आप लोग जाइए । इनका मामला अलग है । इन्हें न तो स्वर्ग वाले लेनेको तैयार हैं, न नरक वाले । इसलिए धर्मराजने निर्णय किया है कि इन्हें वापस धरती पर भेजा जाय ।

[देवदूत जाता है । सब लोग दरवाजेकी ओर बढ़ जाते हैं । नेता फिर अपनी पेटी उठा कर मंचके बीचमें लाकर रखता है । परदा गिरता है

बलिदान

•

बलिदान

[पहला दृश्य । समय : संध्या]

[एक विद्यार्थी नवयुवकका कमरा। चीजें जहाँतहाँ बिखरी पड़ी हैं। एक ओर दीवारके साथ पलंग सटा हुआ है। तकिया पलंगपोशके ऊपर पड़ा है। सामने वाले कोनेमें मेज कुरसी लगी है। उसके साथ ही बगलमें एक अलमारी है, जिसमें किताबोंके अतिरिक्त और कई चीजें हैं, जैसे, कपड़े, जूते, पुराने अख़बार। पलंगके सामने एक आरामकुर्सी है, जिस पर रमेश टाँगें पसारे बैठा है। दूसरी कुरसी पर बलदेव हथेली पर ठुड्डी टेके बड़े गंभीर भावसे रमेशकी ओर देख रहा है। बलदेव उठता है, कमरेका चक्कर काटता है, फिर खिड़कीसे बाहर झाँकता है। फिर खिन्न होकर पलंग पर लेट कर कुछ सोचने लगता है। रमेश उसकी यह हरकतें देख कर झुँझलाता है।]

रमेश— तुम्हें हो क्या रहा है? बैठते क्यों नहीं चैनसे?

बलदेव— चैन मिलता कहाँ है। यह इतना बड़ा काम जो शिर पर आ पड़ा है।

रमेश— घबराते क्यों हो? देखो तो सेनेटका फ़ैसला क्या होता है।

बलदेव— अरे, सेनेट क्या फ़ैसला करेगी—सदाकी तरह इधर-उधरकी फ़जूल बातें करके छात्रोंको बहकाना चाहेगी। [जोशमें उठ बैठता है] परन्तु इस बार हम आसानीसे नहीं मानेंगे। यूनिवर्सिटी होती है छात्रोंको शिक्षा देने तथा संस्कृति व शिष्टाचार सिखानेके लिए, न कि विद्यार्थियोंको तंग करके उनका गला घोंटनेके लिए। देखा तुमने, परीक्षाका तिथिक्रम कैसा बनाया है। हिसाब और जुगराफ़िएके परचे एक ही दिन रख दिये। मरेंगे न वे जिन्होंने ये दोनों मज़मून ले रखे

है। उधर संस्कृतके दोनों परचे एक ही दिन, और उससे पहले कोई छुट्टी तक नहीं। फिर दोष देते है लड़कोंको कि वे बिना विचारे मनमानी करते है।

रमेश— तुम्हारा तो दिमाग खराब है।

बलदेव— मेरा नहीं, तुम्हारा खराब है, जो कभी-किसी चीज पर ध्यान ही नही देते।

रमेश— तुम्हारी तरह मै छोटी-छोटी बातों पर अपनी शक्ति नष्ट नहीं करता।

बलदेव— क्या यह छोटी-सी बात है?

रमेश— और नही तो क्या! सचसच बताओ, कितने लड़के है जो ये दोनो मजमून लेते है? मेरी जानपहचान वालोमेंसे तो एक भी नही।

बलदेव— तुम्हारी जान-पहचान वालोंमेंसे कोई ऐसा भी है जिसने कभी किताबको हाथ लगाया हो? उनको क्या परवा इम्तहानोंकी—सिनेमा ही उनके लिए काफ़ी है।

रमेश— [मुसकरा कर] मै तो शर्त लगा कर कह सकता हूँ कि यह तिथिक्रम दस विद्यार्थियोंसे अधिकको नुकसान नही पहुँचा सकता। और संस्कृत लेते ही कितने हैं!

बलदेव— दस ही सही। अल्पसंख्यकोंके हक भी तो हैं। उनके अधिकार...।

रमेश— हमनें अपने प्रतिनिधियों-द्वारा—और तुम ही तो उनके नेता थे—रजिस्ट्रारको सुझावपत्र तो भिजवा दिया है। उसने इस बारेमे जाँच करनेकी प्रतिज्ञा भी की है।

बलदेव— लेकिन किया तो कुछ नही न! आज चार बजे तक जवाब देनेको कहा था, अब तो पाँच बज चुके। [सहसा उठ खड़ा होता है] मुझे कुछ करना चाहिए। विद्यार्थियोंको इकट्ठा करके कोई ऐसी बात कर दिखाऊँगा कि यूनिर्वासटी वालोंको याद रहे! अभी तक तो वह उन्ही लोगोंके दम पर जीते हैं

जो अपने साथियोंको त्याग कर दुश्मनोंसे जा मिलते हैं। परन्तु अब जमाना और है। अब ऐसा भगोड़ा हमारी यूनियन में एक भी नहीं है।

[अशोक और रंजीतका प्रवेश]

बलदेव— [उत्सुकतासे] क्या खबर है?

अशोक— खबर क्या होगी—सारे कहते हैं नियम नहीं बदल सकता।

रमेश— मैंने तुमसे क्या कहा था!

बलदेव— [उसकी उपेक्षा करते हुए] रजिस्ट्रारसे मिले?

अशोक— वहींसे तो चले आ रहे हैं।

रंजीत— कहता था कि बड़ा अफ़सोस है, परन्तु समय इतना कम है कि दूसरा कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता।

रमेश— ठीक कहता है—यदि वही वह नियम बदल देनेको तैयार हो जाते, तो मैं उन्हें उल्लू समझता।

बलदेव— तुम चुप भी करोगे या ख्वाहमख्वाह बके जाओगे!

रमेश— [मुँह पर हाथ रख कर, व्यंग्य से] लो, बाबा!

बलदेव— [अशोककी ओर हाथ बढ़ा कर] देखें तो लिख कर क्या दिया है।

रंजीत— लिख कर कुछ नहीं दिया। कहा है कि दफ्तरसे चिट्ठी एक-दो दिनमें भिजवा दी जायेगी।

[रमेश खाँस देता है]

बलदेव— अच्छा, यह बात है! [मेज़ पर हाथ पटक कर] ऐसे ही सही। मैं भी जानता हूँ इन लोगोंका इलाज। मुझे मालूम है ऐसे अवसर पर मेरा क्या कर्त्तव्य है—अपने देशके प्रति तथा अपने साथियोंके प्रति, जिन्होंने अपनी शिक्षाका प्रबन्ध यूनियन के ऊपर छोड़ा है। यह सेनेट वाले सब पूँजीपति हैं और विद्यार्थियोंको अपने स्वार्थका साधन बनाये रखना चाहते हैं। जब तक मैं यूनियनका मंत्री हूँ, मैं ऐसी अनुचित बात कभी नहीं

होने दूँगा । [ऊँचे और गम्भीर स्वरमें] मैं आमरण अनशन करूँगा ।

रमेश— [व्यंग्यसे] इंक़लाब ज़िंदाबाद ! दुनियाके मजदूरो एक हो जाओ !

वलदेव— बकवास मत करो ।

[कठोर, गम्भीर तथा विचारमग्न सूरत बना कर पलंग पर लेट जाता है ।]

अशोक— ठीक है, बलदेव । तुमने इन शैतानोंको सीधा करनेका उत्तम उपाय सोचा है ।

रंजीत— तुम्हारे दिखाये हुए पथ पर चल कर विद्यार्थी अवश्य अपना उद्देश्य प्राप्त करेंगे ।

रमेश— [मुसकरा कर, बलदेवसे] परन्तु मेरे भाई, अनशन करते ही नहीं लेट जाया करते । यह तो पाँचसात दिनके बाद शोभा देता है, जब शरीर इतना शिथिल हो जाय कि चलनाफिरना सम्भव न हो ।

बलदेव— फिर तुमने मजाक किया !

रमेश— नहीं, मजाक कहाँ कर रहा हूँ ! तुमसे तो सहानुभूति प्रकट करना भी व्यर्थ है । कुछ खा पी तो लो । तुमने चायके बाद अब तक कुछ खाया नहीं । शायद रातको भी न खा सको, तो कल सुबह तक तो बहुत दुर्बल हो जाओगे ।

बलदेव— [क्रोधित होकर] बस, बन्द करो यह हँसीमज़ाक़ । यह सोच-विचारका समय है—हँसीमजाक़का नहीं ।

अशोक— सचमुच, रमेश, तुम तो हद करते हो । सेनेटकी इस चुनौती को स्वीकार करके उसे नीचा दिखानेके लिए एक-एक विद्यार्थी की सहायता चाहिए । और तुम हो कि इस प्रश्नकी गम्भीरता को समझनेकी कोशिश ही नहीं करते ।

बलदेव— [क्षीण आवाज़से] नहीं, अशोक, तुम रमेशको नहीं समझे। यह तो अपने स्वभावसे लाचार है। सहायता तो इसे देनी ही पड़ेगी—कहीं भाग थोड़े ही सकता है।

रमेश— कहो, क्या चाहते हो मुझसे ?

बलदेव— [लेटे हुए ही] उपवास तो मेरा निश्चित हो गया। परन्तु] उसके बादकी कार्यप्रणाली अभी निश्चित करनी होगी। पहले तो एक वक्तव्य तैयार करना होगा, जिसमें हमारे नियम तथा उद्देश्यका उल्लेख हो। फिर उसे अखबारोंमे छपवाओ।

रंजीत— यह तो अभी ही जाना चाहिए, ताकि कल तक हमारे मंत्रीकी भीषण प्रतिज्ञाका ज्ञान हो जाये। जब लोकमत हमारे साथ होगा, तो सेनेटकी क्या हिम्मत कि अपने फैसले पर खड़ी रहे। कल हीसे परीक्षा-भवनके सामने धरना देंगे। नतीजा यह होगा कि लड़के परीक्षाके लिए नहीं बैठेंगे और सेनेटको झुकना पड़ेगा।

बलदेव— पहले वक्तव्य तैयार कर लो। उसीमें यह सब बातें आ जायेंगी। यह अखबारोंके दफ़्तरोंमें शीघ्र ही पहुँच जाना चाहिए। [क्षीण स्वरमें] और यह लो दफ़्तरकी चाबी। [आंखें मूंद लेता है, मानो बातें करनेसे थकावट हो गई हो। कुछ देर ठहर कर] पानी !

रमेश— अभीसे ? अभी तो चाय पिये एक घण्टा भी नहीं हुआ; खानेका समय तो अभी बहुत दूर है। तुम अभीसे तड़पने लगे।

बलदेव— [रमेशकी बातोंकी उपेक्षा कर] अशोक, वक्तव्यमें क्या-क्या लिखा जायगा ?

अशोक— एक खाका तैयार कर रहा हूँ। देख लो, जो कुछ बदलना चाहो अभी अभी बदल देते हैं।

बलदेव— पढ़ो तो।

अशोक— तुम्हारी ओरसे ही लिखा जायगा ?

बलदेव— देख लो, मंत्रीके नामसे जाना चाहिए या अध्यक्षके। न रमेश, रंजीत ?

रमेश— उपवास तुम करोगे या अध्यक्ष ?

रंजीत— मंत्रीके नामसे ही उचित होगा।

अशोक— तो सुनो। [पढ़ता है] "स्टूडेंट्स यूनियन के मंत्री, श्री बलदेव ने यह वक्तव्य प्रेसको भेजा है—यूनिवर्सिटीके अधिकारियोंने इण्टरमीडियेटकी परीक्षाकी उलटी-सीधी तारीखें निश्चित करके तथा विद्यार्थियोंके प्रतिनिधियों-द्वारा भेजे हुए सुझावपत्र को अस्वीकार करके जो उनके अधिकारों पर अनुचित-हस्तक्षेप किया है, उसका स्टूडेंट्स यूनियन पूर्णतः विरोध करती है। विद्यार्थियोंने मिलकर यह प्रस्ताव मंजूर किया है कि जब तक परीक्षाकी तारीखें बदल कर उनकी अन्य माँगें स्वीकार न की जायँगी, तब तक कोई भी विद्यार्थी परीक्षामें नहीं बैठेगा। इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिए यूनियनके मंत्री श्री बलदेवने आमरण अनशनका भीषण व्रत धारण किया है। यह उपवास तब तक जारी रहेगा जब तक हमारी सभी शर्तें नहीं मान ली जायँगी।" क्यों, कैसा है ?

बलदेव— हाँ, ठीक ही है। केवल एक ही जगह पर ज़रा नरम मालूम होता है। शब्द तीखे लगाओ, ताकि उनको चुभें। इससे उनको यह भी मालूम हो जायगा कि हमारे इरादे कितने पक्के हैं।

अशोक— कहाँ पर बदलना चाहते हो ?

बलदेव— दिखाना ज़रा कागज़। [अशोकके वक्तव्यकी कापी हाथमें लेते हुए] केवल 'अनुचित हस्तक्षेप' काफ़ी नहीं। यहाँ तो 'अत्याचार' होना चाहिए, बल्कि 'घोर अत्याचार'।

अशोक— [लिखकर] और ?

बलदेव— 'भीषण व्रत' की जगह 'दृढ़ व अटल प्रतिज्ञा' लिखें, तो कैसा रहे ?

रमेश— ज़रूर, ज़रूर। मैं तो कहता हूँ कि दोचार बड़े-बड़े शब्दोंका प्रयोग भी अवश्य करो, जैसे कि 'ऐतिहासिक', 'अन्तर्राष्ट्रीय'। यह तो हर लीडरके वक्तव्यमें होते हैं।

बलदेव— और यह वक्तव्य अखबार वालोंको केवल भिजवा देना ही काफ़ी न होगा। तुम्हें स्वयं जाकर देना चाहिए। ताकि कल सुबह सब अख़बारोंमें छप जाये। परीक्षा कल ही प्रारम्भ होनेवाली है। लड़के-लड़कियोंको प्रातःकाल ही मेरे उपवास का पता चल जाये, तब काम बनेगा।

अशोक— हर अख़बारके पहले सफ़े पर आना चाहिए—परीक्षकोंके पास इतना समय कहाँ होगा कि वे सारा अख़बार देख सकें।

बलदेव— और इस प्रस्तावकी एक कापी वाईसचासलरको, एक गवर्नर को, एक बाबू राजेन्द्रप्रसादको, एक जयप्रकाशनारायणको, एक गोविन्दवल्लभ पन्तको...।

रमेश— एक सर आग़ाख़ांको, एक जनरल मैकार्थरको...।

अशोक— तुम कभी गम्भीर होना भी सीखोगे या नहीं? [क्रुद्ध होकर] यहाँ हमारे लीडर [बलदेवकी ओर संकेत करके] जान देने को उद्यत हैं और तुम्हें अपने बेहूदा मज़ाक सूझते हैं।

बलदेव— [अशोकको शान्त करनेका प्रयत्न करते हुए] तुम इसकी बातों पर ध्यान न दो। इसका स्वभाव ही ऐसा है। बेचारा करे भी क्या—अभी तक अपनी जबान पर तो क़ाबू पा नहीं सका। तुम जाओ अपना काम करो। प्रेसमें छपवानेका प्रबन्ध करो।

अशोक— केवल प्रेसमें भिजवा देना ही तो काफ़ी नहीं होगा। इसके बाद भी तो काम जारी रखना चाहिए।

रंजीत— वह तो बहुत आवश्यक है। एक तो जलूस निकालना होगा।

रमेश— काला झण्डा भी तो बनवाना होगा।

सातवलेकर—केवल एक मिनट लूंगा—यह देखिए...पूनासे एक युवती लिखती हैं कि वह बड़ी दुविधामें है—उसे समझ नहीं आ रही शादी किससे करे—एक खूबसूरत परन्तु निर्धन युवकसे जिसे वह प्रेम करती है, या एक सीधे सादे अधेड़ पुरुषसे जिसके पास पैसा भी है—घर भी...! कहती हैं उत्तर तुरन्त ही "महिलामण्डल"में छाप दीजिए...

मदनगोपाल—अमीर आदमी ही से करनी चाहिए।

सातवलेकर—यह तो कोई भी पत्रिका जिसे तरुणियोंका तनिक भी अनुभव है कभी नहीं कहेगी...कहना यह चाहिए कि अपने हृदयको टटोलो, यदि वास्तविक प्रेम है तो उसी पर अटल रहो। प्रेम अमूल्य वस्तु है उसकी तुलना रुपयेसे नहीं की जा सकती...

प्रकाश— कुछ भी लिख दो—आखिर शादी होती तो 'लौटरी' ही है—कितना भी सोच-विचार करो।

...

[सम्पादकका प्रवेश]

सम्पादक— यह क्या ग़जब कर डाला तुम लोगोंने [हाथमें पकड़े हुए कुछ पत्र उनकी ओर हिला कर]—यह सात पत्र आये हैं और "अखरोटोंके लड्डू बनानेकी विधि पर—क्या लिखा था तुमने पिछले रविवारको ?

सातवलेकर—मैंने बताया था कि प्राचीन युगोंमें लड्डू बनाते थे "अखरोट की गिरी, केलेका छिलका, आमकी गुठली और बबूलकी छालको पीस कर..."

सम्पादक— [बात काट कर] इन पत्रोंसे तो यह ज्ञात होता है कि छः कुटुम्ब पड़े पीड़ासे कराह रहे हैं...और मुझे डर है कि वकीलों से सलाह ले रहे होंगे।

सातवलेकर— यह तो बुरी बात है...मुझे विश्वास है उन्होंने कुछ ग़लत सलत चीजें मिला दी होंगी...